33

6.1

॥ श्रीः ॥

संस्कृत-

गद्यकाव्यकैरवी

६१

चारुचन्द्रशास्त्री

॥ श्रीः ॥

संस्कृत-

गद्यकाव्यकैरवी

सम्पादयिता—

श्री चारुचन्द्र शास्त्री

प्रकाशक

चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-१

: १९५८ :

प्रकाशक—

चौखम्बा विद्याभवन,

चौक, वाराणसी-१

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम प्रकाशन

१९५८

मूल्य १।।।)

मुद्रकः—

विद्याविलास प्रेस,

वाराणसी-१

SANSKRIT

GADYA-KĀVYA-KAIRAVĪ

[A Prose Selection for B. A. Course]

By

Shrī Chāru Chandra Shastri

CHOWKHAMBA VIDYA BHAWAN

CHOWK, VARANASI-1

1958

विषयक्रमः

निवेदन

संस्कृत वाङ्मय में साहित्यिक गद्य अपेक्षाकृत बहुत कम है तथापि उसकी तन्वी सीमा भी बड़ी मनोरम है। दार्शनिक गद्य के अतिरिक्त संस्कृत गद्य अधिकांश उपदेशात्मक हैं तथा बालबोध भी हैं, परन्तु उपन्यास की कोटि में रखी जाने योग्य कथाएँ प्रायः समासबहुल एवं कठिन हैं, उनकी वर्णनशैली ओजस्विनी एवं अतिविस्तृत है। अतएव संस्कृत साहित्य में प्रवेश करने के इच्छुक पाठकों के लिये सुगम सामग्री सहज उपलब्ध नहीं होती। विश्वविद्यालयीय छात्रों को अधिकतर बाणभट्ट पर ही अवलम्बन करना पड़ता है, क्योंकि सुबन्धु दुर्गम है तथा दण्डी की रचना व्याग्रमुखी है। बाणभट्ट की शैली से छात्र को भाषा पर अधिकार प्राप्त करना इस युग में दुस्साध्य है, जब कि छात्रों द्वारा व्याकरण का अध्ययन नाम मात्र का ही किया जाता है। सामान्य वाचन का अधिक अवसर प्राप्त होने पर ही अध्येताओं को लाभ हो सकता है। विश्वविद्यालयों के उपस्नातक कक्षा के योग्य संकलन बहुत ही कम है जो विविध शैली का परिचय करा सके तथा व्यापक अध्ययन के लिये सामग्री भी प्रस्तुत करे। इसी अभाव को किसी मात्रा में पूर्त करने के उद्देश्य से प्रस्तुत संकलन उपस्थित किया जा रहा है। इसमें सुबन्धु, दण्डी, बाणभट्ट जैसे गद्यमल्लों के सुगम आदर्श तो हैं ही, परन्तु साथ ही साथ कतिपय यशस्वी आधुनिक गद्य-निर्माताओं की रचनाओं के भी निदर्शन दिये गये हैं। उपनिषद् के उद्धरण से प्रारम्भ कर नवीनतम लेखकों के लेख भी लिये गये हैं। इसमें कालिदास की नाटकीय कथा का संक्षेप भी अन्तर्गत किया गया है। विगत शताब्दी के सिद्धहस्त मनस्वी लेखक पं० अम्बिकादत्त व्यास, पं० विश्वेश्वर पांडेय तथा महामहोपाध्याय

शंकरलाल की अप्रतिम मनोरम कला के परिचायक अंश भी यहाँ उपस्थित किये गये हैं जो वर्तमान युग में भी संस्कृत रचना की सजीवता प्रमाणित करते हैं। प्रारम्भ में परिचय के रूप में संस्कृत कथा साहित्य का एक विहङ्गम आलोक छात्रों के हितार्थ संक्षिप्त रूप में रखा गया है। प्रत्येक पाठ के प्रारम्भ में लेखक का स्वल्प परिचय तथा संकलित अंश का उपक्रम भी दिया गया है।

अन्त में शब्दार्थ-संग्रह, कतिपय कठिन शब्दों का अर्थ देकर अध्ययन में सुकरता साधन करने की चेष्टा मात्र है।

प्रस्तुत सङ्कलन योग्यता से सम्पादित किया गया है तथा संस्कृत गद्य-साहित्य के व्यापक स्वरूप का परिचायक है।

आशा है प्रस्तुत सङ्कलन विश्वविद्यालयों की पहली सीढ़ी चढ़नेवाले अध्येताओं के लिये हितकर सिद्ध होगा।

वाराणसी
जनवरी १९५८

विनीत
प्रकाशक

परिचय

गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति

रचना की दृष्टि से काव्य के तीन भेद हैं—गद्य, पद्य और मिश्र। गद्य-रचना कवि की प्रतिभा की कसौटी है—यह उक्ति बड़ी सारगर्भ है। गद्य-लेखन में कवि को न केवल चरित्र-चित्रण पर ही ध्यान देना होता है अपितु कथोपकथन मनोरम एवं उदात्त तथा सजीव बनाने के लिये आदि से अन्त तक सतर्क रहना पड़ता है। कथा की आत्मा यद्यपि रसरूप होती है तथापि अद्भुत का निर्वाह उसका प्राण है। अद्भुत के चमत्कार से ही पाठक हरिण की तरह गद्य-कवि की ओर आकृष्ट होकर उस ललित पदावली के सङ्गीत से निस्पन्द होकर मुग्ध हो उठता है। यद्यपि पद्य की अपेक्षा गद्यकाव्य की मात्रा स्वल्प पाई जाती है तथापि संस्कृत वाङ्मय में जितना भी गद्यकाव्य उपलब्ध है वह बड़ा सजीव एवं रोचक है तथा तत्कालीन सामाजिक स्थिति का सुन्दर प्रतिबिम्ब है।

कथा-साहित्य

संस्कृत में गद्यकाव्य दो श्रेणियों में रखा गया है—१ कथा और २ आख्यायिका। कथा में वर्णित विषय प्रायः कवि की प्रतिभा से उत्पाद्य रहता है, आख्यायिका न केवल ऐतिहासिक कथावस्तु को ही पुरस्कृत करती है अपितु कवि की जीवनी का चित्र भी आत्मकथा के रूप में उपस्थित करती है। साहित्याचार्यों ने कथा और आख्यायिका के बीच भेद के अन्य लक्षण जो भी दिये हैं वे वास्तविक नहीं-से हैं और आचार्य दण्डी ने काव्यादर्श में यह सत्य प्रतिपादन किया है कि कथा और आख्यायिका में कोई तात्त्विक भेद नहीं है। अतएव यही कहना उचित है कि किसी भी कथा-नायक के चरित्र का चित्रण उपन्यास के

रूप में जिस गद्यकाव्य में किया गया हो वह 'कथा' के अन्तर्गत ही है। तथापि यह बता देना आवश्यक है कि भारत में कवित्वशक्ति का पद्यात्मक प्रवाह इतना प्रबल रहा है कि कथाओं का ग्रथन पद्यरूप में भी अनल्प है। अतएव संस्कृत का कथासाहित्य गद्य और पद्य दोनों में ही उपनिबद्ध प्राप्त होता है।

कथोपकथन की परम्परा

कथा के सन्निवेश करने की प्रथा वैदिक साहित्य में नाराशंसी और पुराकल्प के रूप में सर्वप्रथम उपलब्ध होती है। संहिताओं के पश्चात् ब्राह्मणग्रंथों में भी आख्यान के रूप में कथाएँ मिलती हैं, जैसे शतपथ ब्राह्मण में उर्वशी एवं पुरूरवा की प्रणयकथा। आरण्यकग्रंथों के अन्तर्गत उपनिषदों में भी कथाएँ कम नहीं हैं—'नचिकेता का उपाख्यान' जैसे आध्यात्मिक तत्त्व का विश्लेषण करने वाले अनेक आख्यान उपनिषदों में दिये हैं। पुराणग्रंथ तो उपाख्यानों का असीम भाण्डार हैं; रामकथा तथा कृष्णकथा तो रामायण और महाभारत में विस्तार से उपवर्णित हैं।

इसी परम्परा को लेकर संस्कृत वाङ्मय के लौकिक साहित्य में अनेक कथाओं की रचनाएँ हुईं। कहा जाता है कि ईसा की प्रथम शताब्दी में वर्तमान महाराज सातवाहन के समकालीन महाकवि गुणाढ्य ने एक बृहत्काय कथाप्रबन्ध की रचना पैशाची भाषा में की थी जो आज अप्राप्त है। गुणाढ्य की बृहत्कथा का संस्कृत में अनुवाद करते हुए बुध स्वामी ने (ई० ५ वीं शताब्दी) 'बृहत्कथा-श्लोकसंग्रह' नामक ग्रन्थ की रचना की। वास्तव में संस्कृत कथासाहित्य का यही आदिग्रन्थ माना जाता है। उसी प्रणालिका को अपनाते हुए क्षेमेन्द्र ने (१०२९-१०६४) बृहत्कथामञ्जरी का निर्माण किया। ई० सन् १०७० के लगभग सोमदेव भट्ट ने महाराज अनन्तदेव की रानी सूर्यवती के मनोविनोदार्थ कथासरित्सागर की रचना की। वेतालकथाओं का समावेश

क्षेमेन्द्र और सोमदेव भट्ट दोनों ने ही अपने-अपने ग्रन्थों में किया है।

इन बृहत्कथा ग्रन्थों के अतिरिक्त उपदेशात्मक बालोपयोगी नीतिकथाओं की रचना का उपक्रम विष्णुशर्मा ने किया। दक्षिणापथ में महिलारोप्य के राजपुत्रों की शिक्षा के लिये उन्होंने पञ्चतन्त्र की रचना की। इसमें पशु-पक्षियों की चरित-कथाओं के द्वारा नीतिशास्त्र के तत्त्व सुगम रीति से सिखाये गये हैं। इसकी भाषा सुगम है और अनेक सुभाषित पद्यों से ओतप्रोत है। पञ्चतन्त्र के ही रूपान्तर तन्त्राख्यायिका की रचना काश्मीर में हुई और उसका अनुकरण करते हुए नारायण पण्डित ने हितोपदेश को प्रस्तुत किया। लघुकथासङ्ग्रहों में सिंहासनद्वात्रिंशिका तथा शुकसप्तति और वेतालपञ्चविंशति प्रमुख हैं। महाकवि विद्यापति ने (१४ वीं शताब्दी ई०) अपने आश्रयदाता मिथिलेश्वर के आदेश पर पुरुषपरीक्षा नामक लघुकथाओं का संग्रह रचा जिसमें सत्पुरुष के लक्षण-उदाहरण एवं प्रत्युदाहरण कथाओं के द्वारा विवेचित किये गये हैं। बौद्ध-साहित्य में अवदानकल्पक तथा दिव्यावदान प्रसिद्ध हैं। आर्यशूररचित जातककथा भगवान् बुद्ध की जन्मकथाओं का एक सरल बौद्ध संस्कृत भाषा में निबद्ध संग्रह है। मध्ययुगीन जैनसाहित्य ने भी कथाओं की रचना में उल्लेखनीय सहयोग दिया। हरिषेण का कथाकोष मेरुतुङ्ग का प्रबन्धचिन्तामणि अनेक आख्यानों का सरस सङ्कलन है। इसमें भी छोटी-छोटी अनेक मनोहर कथाएँ दी गई हैं।

उपन्यास अथवा नवलकथा के रूप में कथाओं को प्रस्तुत करने वाले ख्यातिलब्ध तीन गद्यलेखक हुए हैं—यही कवित्रयी गद्यसाहित्य के महारथी माने जाते हैं—ये हैं सुबन्धु, दण्डी और बाणभट्ट। इन्होंने संस्कृत भाषा को, अद्भुत कथाओं की रमणीय रचना करके अनुगृहीत किया है।

उपर्युक्त कवित्रयी में कालक्रमानुसार बाण-दण्डी-सुबन्धु यह पौर्वा-पर्य निश्चित-सा प्रतीत होता है। बाणभट्ट शोण नद के पास प्रीतिकूट

नामक ग्राम में रहते थे। ये वात्स्यायन वंश के ब्राह्मण विद्वान् चित्रभानु के पुत्र थे। महाराज हर्षवर्धन के राजपण्डित होने का सौभाग्य बाणभट्ट को प्राप्त हुआ था। ह्वान सांग के संस्मरणों के आधार महाराज हर्षवर्धन का शासनकाल ई० सन् ६१०-६४० तक का इतिहासकारों ने स्वीकृत किया, अतएव बाणभट्ट का गौरवकाल ईसा की सातवीं शताब्दी का द्वितीय पाद रहा होगा ऐसा मानना सहज है। बाणभट्ट के द्वारा लिखित कादम्बरी एक सुन्दर कथा है, हर्षचरित एक आख्यायिका है। इसके अतिरिक्त उन्होंने चण्डीशतक नामक खण्डकाव्य भी लिखा है। बाणभट्ट की रचनाओं में सर्व प्रकार की रीतियों के निदर्शन मिलते हैं। यदि उनकी भाषा कहीं ओजस्विनी और शैली गौड़ी है तो अनेक स्थान पर प्रसादगुण से युक्त तथा वैदर्भी भी पाई जाती है। उनकी रचनाओं में माधुर्य गुण सविशेष है तथा रीति पाञ्चाली है। उनकी भाषा में समास अधिक हैं परन्तु प्रायः दुरूह नहीं, वे कर्णमधुर तथा उदात्तभाव को अङ्कित करने वाले होते हैं। उनकी भाषा में आलङ्कारिकता है परन्तु उनका प्रयोग कहीं भी भारवाही नहीं है, उन्होंने अपनी भाषा को श्लेष के कारण बोझिल होने से बचाये रखने में बड़ी सतर्कता अपनाई है। प्राकृतिक वर्णन में वे बड़े कुशल हैं। चरित्र-चित्रण की नैसर्गिकता उनका एक विशेष गुण है। कथोपकथन की कला श्रेष्ठ है। वाचक के मन में अद्भुतजन्य उत्कण्ठा को बनाये रखना उनकी उपन्यास कला की विशेषता है। कादम्बरी में विप्रलम्भ श्रृङ्गार प्रधान है, हर्षचरित में वीर रस मुख्य है। बाणभट्ट भावपक्ष तथा कलापक्ष दोनों में ही उच्च श्रेणी के प्रतिभाशाली महाकवि हुए हैं। आलोचकों ने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है जो उनकी विद्वत्ता के सहज प्रमाण हैं—

रुचिरस्वरवर्णपदा रसभाववती जगन्मनो हरति।
तत् किं तरुणी? नहि नहि वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य॥

श्लेषे केचन शब्दगुम्फविषये केचिद्रसे चापरे-
ऽलङ्कारे कतिचित्सदर्थविषये चान्ये कथावर्णने।
आ सर्वत्र गभीरधीरवनिताविन्ध्याटवीचातुरी-
सञ्चारी कविकुम्भिकुम्भभिदुरो बाणस्तु पञ्चाननः॥

ये उक्तियाँ बाणभट्ट की शैली तथा प्रतिष्ठा को सिद्ध करती हैं।

आचार्य दण्डी—गद्यकवित्रयी के मध्यमणि हैं। ये महाकवि भारवि के पौत्र तथा मनोरथ के पुत्र थे। इनकी माता का नाम गौरी था। दण्डी को बाल्यावस्था में ही माता-पिता के वियोग का सामना करना पड़ा परन्तु इनके स्थान की पूर्ति सरस्वती एवं श्रुत ने स्वयं ग्रहण कर उनके योग-क्षेम का निर्वाह किया। अवन्तिसुन्दरी में उल्लेख है—

स बाल एव मात्रा च पित्रा चापि व्ययुज्यत।
अयुज्यत गरीयस्या सरस्वत्या श्रुतेन च॥

इस प्रकार सरस्वतीदत्त प्रसाद से परिपोषित दण्डी संस्कृत साहित्य में एक युग के प्रतिनिधि आचार्य की कोटि तक पहुँचे। उनका काव्यादर्श साहित्य शास्त्र पर एक सम्मानित ग्रन्थ है। उनके दशकुमार-चरित एवं अवन्तिसुन्दरीकथा दो गद्यकाव्य हैं। उनकी शैली बाणभट्ट की अपेक्षा सरल तथा अधिक हृदयग्राहिणी है। श्लेष के भार से उनकी रचना सर्वत्र मुक्त है, अनुप्रास और यमक उनकी भाषा में स्वयं उपस्थित होने वाले अलङ्कार हैं। उनकी रचना में अधिकतर प्रसादगुण है और उनकी रीति वैदर्भी है। 'दण्डिनः पदलालित्यम्' एक प्रसिद्ध विरुदोक्ति है। जब उनकी ललित पदावली तिर्यग्वर्ग के प्राणियों को भी मोहित करती थी, तब सहृदयों के मृदुल चित्तों की तो कथा ही क्या? 'आवर्जने तिरश्चामप्येति हृद्य इव ध्वनिः' उनके सम्बन्ध में यह उक्ति सर्वथा उपपन्न है। अपने गुण-गौरव के कारण ही उन्होंने काञ्ची के पल्लववंशीय राजदरबार में बड़ा सम्मान पाया था। आचार्य दण्डी

का समृद्धिकाल ईसा की सातवीं शताब्दी का उत्तरार्ध माना जाता है।

सुबन्धु के सम्बन्ध में इतिवृत्त का पता बहुत ही कम है। कहा जाता है कि वे चन्द्रगुप्त के पुत्र बिन्दुसार के साथ सम्बन्ध रखते थे—'सुबन्धुः किल निष्क्रान्तो बिन्दुसारस्य बन्धनात्'—इस उक्ति को यदि सत्य माना जाय तो सुबन्धु को बाण और दण्डी से कहीं अधिक पूर्वतन होना चाहिये। परन्तु आलोचक वर्ग उन्हें अधिकतर ईसा की आठवीं शताब्दी का कवि मानते हैं। जो भी हो, सुबन्धु की महिमा उनकी श्लेषमय गद्यरचना के लिये अप्रतिम है। उनकी वासवदत्ता एक लघुकाय कथा है। उसका कथाभाग बहुत ही अल्प है। चमत्कार केवल वर्णन-क्रम तथा भाषा की प्रौढि में ही निहित है। उनकी भाषा प्रत्यक्षर श्लेषमय तथा गौड़ी रीति से उपनिबद्ध है। भाषा कुछ जटिल होने पर भी सरलता का निर्वाह यथावत् करती है। वासवदत्ता के अतिरिक्त किसी साहित्यशास्त्रपरक ग्रन्थ की तथा छन्दःशास्त्र पर एक ग्रन्थ की रचना उन्होंने की थी; यह उपलब्ध ग्रन्थों में उनके नाम से दिये हुए उद्धरणों के आधार पर कहा जा सकता है।

इन तीन महाकवियों की परम्परा का अनुसरण करते हुए अन्य गद्यकथाओं की रचनाएँ आगे चल कर हुईं।

मध्ययुग में वत्स गोत्र में उत्पन्न एक और वामन भट्ट बाण हुए हैं जिनका गद्यकाव्य वेमभूपालचरित तथा पार्वतीपरिणय नाटक उपलब्ध हैं। वामन भट्ट ने अपने सगोत्र बाणभट्ट की शैली का अनुकरण किया है जिसका प्रतिबिम्ब स्थान-स्थान पर प्रतिफलित है। परन्तु किसी ऐतिहासिक पुरुष का जीवनचरित लेकर चरितकाव्य की परम्परा प्रवृत्त करने में वे अग्रसर हुए। उसी प्रवाह में मुगल दरबार के प्रतिष्ठित विद्वान् पण्डितराज जगन्नाथ ने आसफविलास की रचना की थी। उनका अभ्युदयकाल शाहजहाँ एवं दाराशिकोह का राज्यकाल ही था।

इससे पूर्व आनन्दधुर ने (ई. १०वीं शताब्दी) में माधवानल कथा की रचना की जिसमें वीररस से मिश्रित कामकन्दला के साथ माधवानल के प्रणय का रुचिर वर्णन है। इसमें गद्य के साथ पद्य का भी उपयोग किया गया है। ईसा की दसवीं शताब्दी में धनपाल नामक जैन कवि हुए हैं। ये सर्वदेव के पुत्र तथा शोभन के भाई थे। इन्होंने भारतवर्ष के तत्कालीन विश्वविद्यालयों में रहकर विद्या सम्पादित की थी तथा धारेश्वर वाक्पतिराज के द्वारा सम्मान प्राप्त किया था। इनके द्वारा रचित तिलकमञ्जरी एक रोचक उपन्यास है जिसकी रचना उन्होंने अपने आश्रयदाता को प्रसन्न करने तथा जैन धार्मिक कथाओं से अवगत करने के हेतु की थी। यह एक विस्तृत कथा है जिसमें समरकेतु का तिलकमञ्जरी के साथ प्रणय का वर्णन है। इनकी भाषा और शैली बाणभट्ट का अनुकरण करती है तथा कादम्बरी की भाँति इसमें भी अन्तर्कथाओं का सन्निवेश है। धनपाल कवि की प्रकृति एवं मानव-निसर्ग का चित्रण करने की कला मनोहर है।

उनके बाद ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी में कायस्थ-कुलोत्पन्न शूरवर्मा के पुत्र सोड्ढल हुए जिनकी उदयसुन्दरी नामक कथा बड़ी प्रसिद्ध है। इसमें आठ उछ्वास हैं और कथोपकथन मनोहर है। इसकी भाषा ललित एवं प्रासादिक है। इसमें प्रतिष्ठान के राजा मलयवाहन का उदयसुन्दरी के साथ प्रणय का आख्यान है। दिगम्बरजैन मत के यतिराज वादीभसिंह (जन्मनाम उदयदेव) का काल ईसा की १२वीं शताब्दी कहा जाता है। उन्होंने ११ लम्बकों में महाराज सत्यधर और उनके पुत्र जीवधर के जीवन-चरित का वर्णन करते हुए गद्यचिन्तामणि नाम की कथा लिखी है। इसमें वैराग्य की भावना प्रमुख है तथा रस मुख्यतः शान्त है। भाषा प्राञ्जल है तथा वर्णन की शैली बाणभट्ट से मिलती-जुलती है।

वर्तमान युग में भी संस्कृत-साहित्य का स्रोत अप्रतिहत रूप से प्रवर्तमान है। विगत दो शताब्दियों में प्रभूत रचनाएँ हुईं जिनका प्रवाह बहुमुखी है। पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव से तथा वीरपूजा की भावना से अनुप्राणित हो सामयिक समस्याओं को भी यथोचित स्थान देते हुए आधुनिककाल का संस्कृत साहित्य समाज का प्रतिनिधित्व करता है। इस युग के कवियों में प्रतिभा भरपूर है तथा उत्साह सर्वोपरि है। देश के हर प्रान्त में कविगण का प्रादुर्भाव हुआ जिनकी रचनाएँ अमर साहित्य की सुकुमार मञ्जरियाँ हैं। इन दिनों ऐतिहासिक वीरों के जीवन-चरित्र का विशेष कर गद्यकथा के रूप में वर्णन हुआ है। पं० अम्बिकादत्त व्यास का नाम इस पङ्क्ति में अग्रगण्य है। इनका जन्म विगत शताब्दी के पूर्वार्ध में काशी में हुआ। ये एक अद्भुत प्रतिभाशाली विद्वान् हुए। इनका शिवराजविजय गद्यकाव्य तथा साम्ववत नाटक बड़े प्रसिद्ध हैं। शिवराजविजय में छत्रपति शिवाजी का चरित्र ललित गद्य में वर्णित है, इसमें वीर रस प्रधान है। आधुनिक काल में उपयोग में आने वाले व्यावहारिक शब्दों के संस्कृत पर्यायों का प्रचुर प्रयोग इनकी भाषा की विशेषता है। इसी वर्ग में महाराणाप्रतापचरित भी अच्छा ग्रन्थ है जिसके निर्माता इन्दौरनिवासी पण्डित श्रीपादशास्त्री हैं। आपने अन्य गद्यबद्ध चरित सरल संस्कृत में लिखे हैं। पण्डित जीवानन्द विद्यासागर द्वारा रचित गद्यकथासरित्सागर एक उपादेय ग्रन्थ है जो सोमदेव भट्ट के कथासरित्सागर का रूपान्तर है। रूपान्तरित ग्रन्थों में कालिदासकृत नाटकों का कथासार, शेक्सपीयर की नाट्यकथाओं का संस्कृत में वर्णन तथा रामायण एवं महाभारत का अजमेरवासी पं. शिवदत्त द्वारा गद्यरूपान्तर विद्वानों के सम्मुख उपस्थित हैं। इसी तरह वासुदेवप्रणीत रामकथा, महादेवकृत मुद्राराक्षसकथा, शर्मारचित वासवदत्ताकथासंग्रह ने सरल गद्यकाव्यों के भण्डार को समृद्ध किया

है। श्री मोड़क द्वारा रचित चोरचत्वारिंशी कथा (अलीबाला की चालीस चोरों के साथ की कहानियाँ) तथा आचार्य हरिवंश कोचर एवं श्री सुरेन्द्रनाथ शास्त्री द्वारा प्रणीत वेतालकथा रूपान्तरित कथाओं में विशेष उल्लेखनीय हैं। मौलिक ग्रन्थों में कृष्णमाचार्यकृत मन्दारवती, जग्गूवकुलभूषणकृत स्यमन्तककथा, हरिदास सिद्धान्तवागीशकृत सरला एवं शिवाजी बड़ी सुन्दर गद्यरचनाएँ हैं। इसी कोटि में श्री महालिङ्गशास्त्री की रचनाएँ भी सराहनीय हैं। इस वर्ग में विशेषतः सम्मानार्ह रचनाएँ आशुकवि महामहोपाध्याय श्री शंकरलाल की हैं। उनकी भाषा की प्रौढि तथा सन्दर्भविन्यास की कला अपूर्व है। स्त्रीशिक्षा उनके ग्रन्थों का मूल लक्ष्य है। प्रवचनसरणि का आविर्भाव गद्यरचना में सर्वप्रथम उन्होंने ही किया है। उनमें दो गद्य-काव्य—चन्द्रप्रभाचरित तथा भागवतीभाग्योदय बहुत ही सरस रचनाएँ हैं। इनके अतिरिक्त गुणमन्दारमञ्जरी नामक एक लघुकथा भी बड़ी रोचक है। आधुनिक युग में कवयित्री परमविदुषी स्व० पण्डिता क्षमाराव का स्थान कहीं उच्च है। उन्होंने वर्त्तमानयुगीन समस्याओं को लेकर अनेक लघुकथाएँ (Short stories) लिखी हैं। पद्यबद्ध कथापञ्चक तथा गद्यबद्ध कथामुक्तावली अनुपम रचनाएँ हैं। ये न केवल समस्यात्मक ही कथाएँ हैं अपितु पाश्चात्य-परम्परा के अनुसार मान्यताप्राप्त लघुकथा के उत्तम निदर्शन हैं तथा उनका गद्य प्रमाणित करता है कि आज भी कवयित्रियाँ विज्जिका एवं शीलभट्टारिका के स्थान को ग्रहण करनेवाली हैं। आपकी भाषा बहुत ही ललित एवं हृद्य है। विद्वन्मण्डली के चरित का उपक्रम महामहोपाध्याय काशीवासी पं० नारायणशास्त्री खिस्ते ने विद्वच्चरितपञ्चक नामक ग्रन्थ लिखकर प्रस्तुत किया है। दूसरी ओर निबन्धरचनाओं ने भी संस्कृत गद्यसाहित्य की समृद्धि की है। निबन्धलेखकों में महामहोपाध्याय

पं० गिरिधरशर्मा चतुर्वेद, डॉ० मङ्गलदेव शास्त्री, श्री हंसराज अग्रवाल की रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। आलोचनासाहित्य की अभी भी कमी है जिस ओर प्रथम प्रयास विद्वद्वर श्री रेवतीकान्त भट्टाचार्य ने प्रबन्धकल्पलतिका की रचना कर किया है। इनकी रचना बड़ी उपादेय है।

आधुनिक काल में पद्यसाहित्य को सम्पन्न करने का अधिकांश श्रेय संस्कृत पत्रकारों को है। वर्त्तमान युग की प्रणालिका के अनुसार संस्कृत भाषा में कई त्रैमासिक, मासिक, पाक्षिक एवं साप्ताहिक पत्रिकाएँ प्रस्तुत हुईं जिन्हें पर्याप्त आश्रय एवं प्रोत्साहन न मिलने से दीर्घायुष्य से प्रायः वञ्चित रहना पड़ा, तथापि परम्परा कभी लुप्त नहीं रही यही सौभाग्य है। इन पत्रिकाओं में विद्वत्तापूर्ण निबन्ध, आलोचनाएँ, मौलिक कथाएँ, वर्त्तमान वार्त्ताएँ एवं शास्त्रचर्चा और अनुवादात्मक कई बहुमूल्य रचनायें निकलती जा रही हैं। पत्रकारों में प्रयाग से निकलने वाली 'शारदा' के संपादक पं० चन्द्रशेखर शास्त्री तथा स्वामी श्रीकृष्णाचार्य, 'सहृदया' के सम्पादक अण्णाशास्त्री राशिवडेकर तथा 'संस्कृतरत्नाकर' के सम्पादक पं० केदारनाथ सारस्वत की सेवायें गद्यसाहित्य को समृद्ध करने में अनमोल रही हैं। इनके अतिरिक्त सारस्वती सुषमा (काशी), भवितव्यम् (नागपुर), भारती (जयपुर), संस्कृतसाहित्यपरिषद् तथा मञ्जूषा (कलकत्ता), संस्कृतम् (अयोध्या), दिव्यज्योति (शिमला), संस्कृतपत्रिका (नेपाल), उद्यानपत्रिका (तिरुवायुरु) तथा संस्कृतमहापाठशालापत्रिका (मैसूर) जैसी पत्रिकाओं ने अपार सहयोग प्रदान किया है।

उपर्युक्त साहित्यिक रचनाओं के अतिरिक्त अनेक छोटी-बड़ी रचनाएँ संस्कृत के अपरिमेय भण्डार की अतुल निधि हैं। यह सनातन संस्कृत-साहित्य देशभाषा-साहित्य का उपजीव्य एवं परिपोषक सदा अजर एवं अमर है और कल्पतरु के समान सदा प्रत्यग्र फल-पल्लवों से सुशोभित है।

—:o:—

॥ श्रीः ॥

संस्कृत-
गद्यकाव्यकैरवी

: १ :

अन्नं बहु कुर्वीत

[वैदिक साहित्य के अन्तर्गत ब्राह्मण तथा आरण्यक ग्रन्थों में संस्कृत गद्य-रचना का प्रारम्भिक स्वरूप उपलब्ध होता है। इनमें संस्कृत गद्य का प्राचीनतम रूप है। आरण्यकों के अन्तर्गत ही अधिकांश उपनिषदों का समावेश है। उपनिषदों की गद्य-भाषा सरल एवं सुगम है। वर्णनीय विषय प्रायशः आध्यात्मिक है। इनमें कहीं-कहीं सृष्टिवाद, मानव के बहिरङ्ग तथा अन्तरङ्ग स्वरूप का वर्णन, कतिपय कथानक, गुरु-शिष्य-संवाद एवं विविध उपादेय विद्याओं का वर्णन भी मिलता है। सदुपदेश इन रचनाओं का प्रधान लक्ष्य है।

प्रस्तुत अंश तैत्तिरीय उपनिषद् की भृगुवल्ली से उद्धृत किया गया है। इसमें वरुण के पुत्र भृगु अपने पिता वरुण से ब्रह्मविषयक अध्ययन की इच्छा प्रकट करते हैं। वरुण उन्हें अन्न की महिमा समझाते हैं तथा ब्रह्म के स्वरूपज्ञान के लिये तप करने का आदेश देते हैं। उन्हें तप करते क्रमशः अन्न, प्राण, मन, विज्ञान तथा आनन्द के स्वरूप का बोध होता है।]

भृगुर्वै वारुणिः। वरुणं पितरमुपससार। अधीहि भगवो ब्रह्मेति। तस्मा एतत् प्रोवाच। अन्नं प्राणं चक्षुः श्रोत्रं मनो वाच-मिति। तं होवाच। यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन

जातानि जीवन्ति । यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति । तद् विजिज्ञासस्व । तद् ब्रह्मेति । स तपोऽतप्यत । स तपस्तप्त्वा ।

अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात् । अन्नाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते । अन्नेन जातानि जीवन्ति । अन्नं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तद् विज्ञाय पुनरेव वरुणं पितरमुपससार । अधीहि भगवो ब्रह्मेति । तं होवाच । तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व । तपो ब्रह्मेति । स तपोऽतप्यत । स तपस्तप्त्वा ।

प्राणो ब्रह्मेति व्यजानात् । प्राणाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते । प्राणेन जातानि जीवन्ति । प्राणं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तद् विज्ञाय पुनरेव वरुणं पितरमुपससार । अधीहि भगवो ब्रह्मेति । तं होवाच । तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व । तपो ब्रह्मेति । स तपोऽतप्यत । स तपस्तप्त्वा ।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते । विज्ञानेन जातानि जीवन्ति । विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तद् विज्ञाय पुनरेव वरुणं पितरमुपससार । अधीहि भगवो ब्रह्मेति । तं होवाच । तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व । तपो ब्रह्मेति । स तपोऽतप्यत । स तपस्तप्त्वा ।

आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात् । आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते । आनन्देन जातानि जीवन्ति । आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । सैषा भार्गवी वारुणी विद्या । परमे व्योम्नि प्रतिष्ठिता ।

य एवं वेद प्रतितिष्ठति। अन्नवानन्नादो भवति। महान् भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन। महान् कीर्त्या।

अन्नं न निन्द्यात्। तद्व्रतम्। प्राणो वा अन्नम्। शरीरमन्नादम्। प्राणे शरीरं प्रतिष्ठितम्। शरीरे प्राणः प्रतिष्ठितः। तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम्। स य एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितं वेद प्रतितिष्ठति। अन्नवानन्नादो भवति। महान् भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन। महान् कीर्त्या।

अन्नं न परिचक्षीत। तद्व्रतम्। आपो वा अन्नम्। ज्योतिरन्नादम्। अप्सु ज्योतिः प्रतिष्ठितम्। ज्योतिष्यापः प्रतिष्ठिताः। अन्नं बहु कुर्वीत। तद्व्रतम्।

[भृगुवल्ली

: २ :

विक्रमोर्वशीयम्

[लौकिक संस्कृत साहित्य के अनमोल रत्न महाकवि कालिदास हैं। इनका समय अधिकांश विद्वानों के द्वारा ईसा की पाँचवीं शताब्दी स्थिर किया गया है, यद्यपि अनेक आलोचक इन्हें विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में से एक मानते हुए इनका काल ईसा-पूर्व प्रथम शताब्दी निर्धारित करते हैं। साहित्यिक आलोचकों की उक्तियों में कालिदास नाम के तीन कवियों की प्रसिद्धि हैं, सम्भवतः एक विक्रमादित्य के सभारत्न, दूसरे गुप्तसम्राट् के दरबारी तथा तीसरे धारेश्वर भोज के मित्र रहे हों। जो भी हो, कालिदास-रचित रघुवंश, कुमारसंभव दो महाकाव्य; मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय और शाकुन्तल नाटक; तथा ऋतुसंहार एवं मेघदूत खण्ड-काव्य सुप्रसिद्ध हैं। इनकी शैली प्रसादगुण से युक्त, सरस तथा वैदर्भी रीति से अनुप्राणित है। प्रस्तुत अंश इनके विक्रमोर्वशीय नाटक के कथावस्तु का सारांश है। इसमें महाराज पुरूरवा (प्रतिष्ठान—वर्तमान झूसी के राजा) तथा देवाङ्गना उर्वशी के प्रणय की कथा मनोहर रूप से वर्णित है।]

अस्ति हिमाद्रिप्रस्थे बदरीप्रख्यं महर्षिजुष्टं पुण्यारण्यम्। पुरा भगवान्नरसखो नारायणस्तत्र चिररात्राय तपश्चचार। उग्रे तपसि वर्तमानं तं निबोध्य जातशङ्को महेन्द्रस्तन्नियमे प्रत्यूहव्यूहमारचयितुं

नैका अप्सरसः प्रहितवान् । ताश्च सकलकलाकलापकोविदा मधु-सहायं मन्मथं पुरस्कृत्य बदरीक्षेत्रमुपेत्य भगवन्तं नारायणर्षिं प्रलोभयितुं बहुविधं प्रायस्यन् । तेनामर्षितो मुनिः सपदि स्वस्मा-दुरोर्ललनारत्नमेकमुत्पादयामास । तुहिनकरकिरणवर्णामवर्णनीय-सुषमां तां विलोक्य व्रीडिताः सर्वाः सुराङ्गना गलिताखर्वगर्वा यथागतं प्रतिययुः । अथ भगवान्नारायणस्तूरूद्भवां तां कमनीयां कामिनीमुर्वशीत्यभिधाय लेखेन्द्रमुपतिष्ठस्वेत्यादिश्य विससर्ज । ततः प्रभृति स्वर्गस्यालङ्कारभूता सा तपोविशेषपरिशङ्कितस्य महेन्द्रस्य सुकुमारं प्रहरणं बभूव । सा कदाचित् सहचरीभिस्समं कैलासनाथमुपसृत्य निवर्तमाना अर्धपथे एव केशिना दानवेन चित्रलेखाद्वितीया बन्दिग्राहं गृहीता ।

तद्विरहकातरा रम्भामेनकाप्रभृतयोऽप्सरसः 'परित्रायतां परित्रायतां यः सुरपक्षपाती यस्य वाऽम्बरतले गतिरस्ति' इत्यु-च्चैराचुक्रुशुः । अत्रान्तरे प्रतिष्ठानपुराधिपः पुरूरवा भगवन्तं विभावसु-मुपस्थाय निवृत्तस्तत्रैवाजगाम यत्रायमप्सरसां गणः कुररीणामिव करुणं क्रन्दनञ्चक्रुः । तन्निशम्य तत्रोपेतस्तत्रभवान्पुरूरवाः सखी-मुखाद् विदितोदन्तस्तास्तत्रैव हेमकूटशिखरे स्थापयित्वा ऐशान्या दिशा पलायितं महेन्द्रापकारिणं केशिनं वायव्यास्त्रेण लवणाम्बुधौ प्रक्षिप्य स्वयमक्षतशरीरः ससखीमुर्वशीं प्रत्यानिनाय । महेन्द्रोऽपि नारदमुखादुर्वशीं केशिना हृतामवगत्य तत्प्रत्याहरणाय चित्ररथं गन्ध-र्वाधिपं समादिदेश । केशिनं प्रति द्रुतमभिद्रुतः ससैन्यो गन्धर्वराजः मार्गे एव चारणेभ्यो महाराजस्य जयोदाहरणमुपश्रुत्य तत्रैव

हेमकूटशिखरे तं द्रष्टुमुपाजगाम। अभिनन्द्य च महाराजं विहित-महेन्द्रोपकारं तमुर्वशीं पुरस्कृत्य मघवन्तं द्रष्टुमभ्यार्थयत्। 'सखे नायमवसरः शतक्रतुं द्रष्टुम्, त्वमेवैनां प्रभोरन्तिकं प्रापये'त्युक्त्वा अप्रतिरथः पुरूरवाश्चित्ररथञ्चोर्वशीञ्च प्रस्थापयामास।

अत्रान्तरे उर्वश्यपि मदनेन बलवद्बाध्यमाना चित्रलेखया सममाकाशयानेन तत्राजगाम। आगत्य च तिरस्करिण्या विद्यया प्रच्छन्ना भूत्वा राज्ञः सँल्लापमुपशुश्राव। तत्र आत्मनोऽप्यभ्यधिकां मदनबाधां दृष्ट्वा उर्वशी सद्य एव तिरस्करिणीमपनीय राज्ञः पुरतः प्रादुर्बभूव। तां दृष्ट्वा राजनि परमानन्दभरिते सति देवलोकाद् दूतः आगत्य उर्वशीमेवमुवाच—'भगवान् महेन्द्रः भरतमुनिप्रणीतं ललिताभिनयमप्सरोभिरभिनीयमानं द्रष्टुमिच्छति' इति।

तदाकर्ण्य उर्वशी देवेषु अनपराद्धमात्मानं कर्तुं महता कृच्छ्रेण राजानमामन्त्र्य प्रययौ। अथ देवलोकेऽप्सरोभिः प्रयुक्तः लक्ष्मीस्वयंवराख्यस्य काव्यबन्धस्य अभिनयः प्रावर्तत। तत्र लक्ष्मीभूमिकया वर्तमाना उर्वशी वारुणीभूमिकया मेनकया एवं पृष्टा—'सखि! समागताः खलु त्रैलोक्येश्वराः सकेशवाः लोक-पालाः। तेषु कतमस्मिन् ते भावाभिनिवेशः' इति।

पुरूरवसि अत्यन्तमभिनिविष्टभावायाः उर्वश्याः मुखात् पुरुषोत्तमे इति भणितव्ये पुरूरवसीति निर्गता वाणी। तेन क्रुद्धो मुनिर्भरतस्तामेवं शशाप—'येन मम उपदेशस्त्वया लङ्घितः, तेन ते दिव्यस्थानं न भविष्यती'ति। अथ लज्जावनतमुखी सा महेन्द्रेण भणिता—'यस्मिन् बद्धभावाऽसि, तस्य मे रणसहायस्य राजर्षेः

प्रियकारिणी भूत्वा तमेवोपतिष्ठ। यावत् स दृष्टसन्तानो भविष्यतीति। तदनन्तरमुर्वशी किञ्चित् विहस्य चित्रलेखया सह पुरूरवसः प्रासादमुपससाद।

तामेव सर्वदा चिन्तयन् राजा तां दृष्ट्वा नितराम् आनन्दभरितो बभूव। अथ उर्वश्यामत्यासक्तहृदयः पुरूरवा राज्यकार्याणि अमात्येषु निवेश्य तया सह गन्धमादनं पर्वतं गत्वा तत्र सुचिरं विजहार।

तत्र कदाचिन्मन्दाकिनीपुलिनपर्यन्ते सिकतापर्वतैः क्रीडन्तीमुदयवतीं नाम विद्याधरदारिकां निध्यातवान्। अतिदूरमधिरूढप्रणया सा उर्वशी तत् न सेहे। अथ च बहुशो भर्तुरनुनयमप्रतिपद्यमाना कन्यकाजनपरिहरणीयं कुमारवनं प्रविष्टा।

पुरा किल भगवान् महासेनः शाश्वतं कुमारव्रतं गृहीत्वा अकलुषं नाम गन्धमादनवनमध्यासितवान्, स्त्रीसंसर्गमत्यन्तं परिहरन् स भगवान् विधिमेवं कृतवान्—'या स्त्री प्रदेशमिमं प्रविशति, सा लताभावेन परिणमिष्यति, गौरीचरणरागसम्भवं सङ्गममणिं विना न ततो मोक्ष्यते' इति। विदिताऽप्येनं सा उर्वशी देवतासमयं विस्मृत्य अगृहीतानुनया कुमारवनं प्रविवेश। प्रवेशसमनन्तरमेव वासन्तीलताभावेन परिणतमस्या रूपम्। अलङ्घनीयो हि विधिविभवः। तस्मिन्नेव कानने प्रियतमां विचिन्वन् राजा बहूनहोरात्राननतिवाहयाञ्चक्रे। इतस्ततः पर्यटन् कुत्रचित् शिलाभेदान्तरगतमग्निस्फुलिङ्गवत् प्रकाशमानं मणिमेकमपश्यत्। तदानीमशरीरिणी वागेवमश्रूयत—'राजन्! गृह्यतां

गृह्यतां गौरीरागचरणसम्भवः सङ्गमो नाम मणिरयं धार्यमाणः प्रियजनेन सङ्गमयति ।' इति ।

तदाकर्ण्य राजा 'भगवतो मृगाङ्कमौलेराज्ञेयम्' इति विज्ञाय 'भगवन् ! अनुगृहीतोऽस्मि' इत्युक्त्वा तं मणिमादाय शिरसि दध्रे। अथ च पार्श्वपरिवर्तिनीं मनोहारिणीं वासन्तीलतां दृष्ट्वा कराग्रेण मृदु पस्पर्श। तत्रैव लताभावं विहाय निजरूपमापन्ना उर्वशी प्रादुरासीत्। तां दृष्ट्वा प्रमुदितहृदयः पुरूरवास्तया स्मरण-मात्रसन्निधापितेन विमानेन प्रतिष्ठाननगरमवाप ।

एवमुर्वश्या सह देवतारण्येषु सुचिरं विहृत्य प्रतिनिवृत्तः कृतसत्काराभिः प्रकृतिभिरभिनन्द्यमानः बहून् संवत्सरान् राज्यं शशास। अत्रान्तरे धृतगर्भा उर्वशी पुत्रमेकं सुषुवे। 'यदा पुरू-रवाः पुत्रस्य मुखं द्रक्ष्यति, तदा भवत्या भूयोऽपि मत्समीप-मागन्तव्यम्' इति महेन्द्रस्य नियोगमनुस्मृत्य वियोगभीरुः उर्वशी जातमात्रमेव पुत्रं राज्ञोऽविज्ञातमेव भगवतश्च्यवनस्या-श्रमपदे आर्यायाः सत्यवत्याः हस्ते निक्षिप्तवती। स कुमारो यथाकालं भगवता च्यवनेन कृतजातकर्मादिविधानो गृहीतविद्यो धनुर्वेदे चाभिविनीतः पितुराराधनसमर्थो बभूव। अत्रान्तरे तिथिविशेषे गङ्गायमुनयोः सङ्गमे देवीभिस्सह कृताभिषेकस्य राज्ञोऽलङ्करणार्थमनुलेपनमाल्यादिभिः सममानीयमानं सङ्गममणि-मामिषशङ्की गृध्र आचिक्षेप। बाणपथमतिक्रान्तं तं निग्रहीतुं राजा जालिकान् प्रेषयामास ।

अथ दिनान्ते भगवतश्च्यवनस्याश्रमे निवासवृक्षे लीयमानं तं गृध्रमौर्वशेयो बाणस्य लक्षीचकार। आश्रमविरुद्धं तस्य तत् चेष्टितं दृष्ट्वा भगवाँश्च्यवनः सत्यवतीमाहूयैवमादिदेश—'निर्यापयेममुर्वश्याः हस्तनिक्षेपमि'ति। सा तं कुमारमादाय प्रतिष्ठाननगरमाजगाम। उर्वशी तं दृष्ट्वा महेन्द्रस्य नियोगमनुस्मृत्य अश्रुपूर्णमुखी रुरोद। राजापि तन्मुखात् पुत्रमुखदर्शनसमनन्तरभाविनमुर्वशीवियोगं विज्ञाय पुत्रे राज्यभारं विन्यस्य वनाय मतिं चकार। आदिदेश चामात्यपरिषदं कुमारस्य राज्याभिषेकोत्सवसम्भारान् सङ्ग्रहीतुम्। तस्मिन् समये भगवान् नारदः समाजगाम। तं दृष्ट्वा राजा ससम्भ्रममासनादुत्थायार्घ्यपाद्यादिभिरुपचचार।

अथ नारदो राजानमेवमुवाच— 'महाराज! भगवान् महेन्द्रो वनगमनाय कृतबुद्धिं भवन्तमेवमनुशास्ति— त्रैकाल्यवेदिभिर्मुनिभिरादिष्टः सुरासुरविमर्दो भावीति। भवाँश्च मम सांयुगीनः सहायः। तत् त्वया न शस्त्रं न्यसितव्यम्। इयं चोर्वशी यावदायुस्तावत् सहधर्मचारिणी भवत्विति।' तदाकर्ण्योर्वशीपुरूरवसौ महान्तं प्रमोदमवापतुः।

अथ भगवान् नारदो देवलोकादप्सरोभिः समानीतैरभिषेकसम्भारैः कुमारमायुषं भद्रपीठ उपवेश्याभ्यषिञ्चन्। अथोर्वशीपुरूरवसौ परस्परमवियोगेन कुमारस्यायुषा यौवराज्यश्रिया च परां कोटिमानन्दस्याध्यगच्छताम्।

[विक्रमोर्वशीयम्

—oo✿oo—

: ३ :

सत्त्वशीलकथा

[संस्कृत गद्य-साहित्य में कथासाहित्य बड़ा ही रोचक है। इसकी परम्परा के प्रवर्त्तक सातवाहन राजा (प्रथम-शताब्दी ईसा) के समकालीन गुणाढ्य हुए हैं, जिन्होंने पैशाची भाषा में बृहत्कथा नामक अनुपम ग्रन्थ की रचना की। इसका प्रायशः अनुवाद बुधस्वामी ने 'बृहत्कथा श्लोकसङ्ग्रह' के रूप में किया — यह संस्कृत गद्यकथा का प्रथम ग्रन्थ माना जाता है। उसी को आधार रूप में स्वीकृत कर क्षेमेन्द्र ने बृहत्कथा-मञ्जरी तथा सोमदेवभट्ट ने कथासरित्सागर की रचना की। इन दोनों ग्रन्थों में विविध कथानक हैं जो बड़े रोचक एवं हृदयग्राही हैं। उसमें वेतालपञ्चविंशति नामका २५ कथाओं का अद्भुत संग्रह है जिसमें एक वेताल महाराज त्रिविक्रम को २४ कथाएं सुनाता है — ये कथाएं लोकसाहित्य में बहुत प्रसिद्ध हैं तथा विविध देशभाषाओं में अनूदित हैं। प्रस्तुत कथा एक स्वामिभक्त राजकुमार सत्त्वशील की है जिसमें अद्भुतता का उपन्यास बड़ा चमत्कारी है। यह कथा वेतालपञ्चविंशति कथा से उद्धृत की गई है जिसके प्रणेता वर्त्तमानयुग के यशस्वी समालोचक श्री सुरेन्द्रनाथ शास्त्री तथा विद्वान् आचार्य श्री हरिवंश हैं। इनकी भाषा ललित तथा प्रौढ है एवं वर्णनशैली सविशेष मनोरञ्जक है।]

पुनश्चाथ स महीपतिस्त्रिविक्रमसेनस्तस्माच्छिंशपापादपाद् गृहीत्वा तमेव प्रकृतं वेतालं, प्रचलन् पथि प्रोक्तस्तेन—राजन्! प्रशस्यप्रयत्नोऽसि, तव श्रमापनोदनार्थमाख्यामि कथान्तां कर्णे कुरुष्व।

०

पूर्वाम्बुधेस्तटे 'ताम्रलिप्ती'ति प्रसिद्धा पूरस्ति। तस्यां चण्डसेनाभिधो धराधिपोऽभूत्, यः खलुः पराङ्मुखः पराङ्गनासु न तु सङ्गराङ्गणेषु, आहर्ता वैरिसम्पदां न च परकीयसम्पदाम्।

तस्य भूपतेः सिंहद्वारे कदाचिज्जनप्रियः कश्चन राजपुत्रो दक्षिणाशातः समागतः सत्त्वशीलाख्यः। स च तत्र नृपं प्रत्यात्मानं निवेद्य, नैर्धन्यादपरैः राजकुमारैः सह कार्पटिको भूत्वा, बहून्यब्दानि नृपं परिचरन्नलब्धफल एवातिष्ठत् सर्वदा चाकरोच्चेतसि—'यदि राजकुले जन्म, किमीदृशं निर्धनत्वम्? निर्धनत्वञ्चेत्कथम्महापदाभिलाषुकत्वम्? अयमपि नृपः क्षुधावसीदन्तमपि सेवमानं मां नावलोकयति, किमेतदिति?'

एकदा स नरेन्द्रस्तस्मिँल्लगुडकरेऽग्रेसरे कार्पटिके धावति ससैनिको मृगाटवीमविशत्। कृताखेटेन तेन महान्तम् मत्तसूकरं विलोक्य तमनुधावता वनान्तरमतिदूरे वर्त्तमानं प्रापि। तस्मिन् महावने हारितसूकरः स नृपवरो दिङ्मोहमगच्छत्। परिभ्रष्टसैनिकः स खल्वेकाकिना तेन पदातिना क्षुत्तृडर्दितेन कार्पटिकेन तत्त्राणरिरक्षुणा वाताश्वपृष्ठगोऽपि समनुसृतः।

तथाविधमन्वायान्तं तमवलोक्य सस्नेहमवादीत् स भूपतिः, 'वेत्सि कच्चिद्यथागतम्मार्गम् ?' तदाकर्ण्य बद्धाञ्जलिना तेनावादि- 'स्वामिन् ! वेद्मि सम्यक्, क्षणं विश्राम्यतु प्रभुस्तावदत्र ललाटन्तपस्तपति भगवान् सप्तसप्तिः।' श्रुत्वैतत्सोपरोधमभाषत राजप्रवरः, 'एवञ्चेत्तर्हि क्वापि पानीयं प्रेक्ष्यताम्भवता।' इति

एवमुक्तः स परिसरवर्तिनमुत्तुङ्गं तरुवरमारुह्य नातिदूरे प्रवहन्तीमुदधिप्रियामवालोकयत्। अथावरुह्य, ततो नरपतिं तत्र नीत्वा, तद्वाहं विपर्याणीकृत्य, कृतविवर्तनञ्च तं दत्ताम्बुशष्पकवलं विगतश्रमं व्यधात्। कृताह्निकाय च राज्ञे वसनप्रान्तादुन्मुच्य हृद्यान्यामलकानि प्रक्षाल्यार्पयत्। कुत एतानीति जिज्ञासुञ्जगतीपतिज्ञानुस्थितस्सामलकाञ्जलिः स व्यजिज्ञपत्—'एतद्वृत्तिरहमतिवाहितवत्सरदशको मुनिव्रतञ्चराम्याराधयन् देवम्' इति तं प्रशस्यावोचत्—

'धिङ् नृपान् क्लिष्टमक्लिष्टं ये भृत्येषु न जानते।
धिक् च तं परिवारं यो, न ज्ञापयति ताँस्तथा॥'

इत्युक्त्वा कार्पटिकहस्तादामलकद्वयं तदनुबन्धविशेषेणागृह्णात्। भुक्त्वा, जलं निपीय, क्षणं विश्रम्य, तेन सज्जीकृतं वाहञ्चारुह्य, जग्धामलकसम्पीतजलेन तेनानुयातः, अलमभ्यर्थितेनापि हयस्य पश्चाद्भागमनारूढेन तेनैव दर्शितमार्गः पथि मिलितात्मसैनिकः स्वपुरीं प्राप्तवान्। तत्र च तद्भक्तिं प्रख्याप्य, तं वसुभिरापूर्याप्यात्मानं नानृणममन्यत। सोऽपि सत्त्वशीलस्त्यक्तकार्पटिकाचारः कृतार्थश्चण्डसिंहस्य भूपतेः पार्श्वेऽतिष्ठत्।

अथैकदा स सिंहलपतेः सुतामात्मार्थं याचितुं राज्ञा सिंहलद्वीपं प्रेषितोऽभवत्। तत्राब्धिवर्त्मना गमिष्यन्नर्चिताभीष्टदैवतो राजादिष्टैर्द्विजवरैः साकं प्रवहणमारुरोह। मध्यभागावधि तस्मिन् प्रवहणेऽशङ्कितं प्राप्ते सुवर्णनिर्मितश्चलद्विचित्रवैजयन्तीविराजितोऽभ्रंलिहाग्रो महाध्वजो जनितविस्मयः पारावारात् समुद्भूत्। तत्कालमेवाकालजलदावली च वर्षितुमारेभे। तैरतिवर्षैराधोरणैरिव बलादाकृष्यमाणः स प्रवहणद्विपः समासक्तो ध्वजस्तम्भे। सोऽपि ध्वजस्तम्भः सार्धं प्रवहणेन वीचिविप्लुते वार्निधौ निमज्जितुं प्रावर्तत। तद्गतास्ते द्विजा भयाकुलाः प्राणपरीप्सवश्चण्डसिंहं स्वभूपतिमुद्दिश्याब्रह्मण्यमुदघोषयन्।

तदाकर्ण्यासहिष्णुः सत्त्वशीलः कृपाणपाणिर्बद्धपरिकरोऽनुध्वजमात्मानमक्षिपन्निरपेक्षमेव महोदधौ। मग्ने च तस्मिँस्तद्वहनं वातोर्मिचपेटिकाभिरभज्यत, तत्स्थाश्च यादोमुखेषु प्रापतन्।

स हि सत्त्वशीलो ध्वजमनुसरन्निदानीं दिव्यं पुरमपश्यन्न तु वारिधिम्। तत्र च रम्यरत्नरचितसोपानवापिकोद्यानशोभिनि मणिस्तम्भभास्वरे हेममन्दिरे मेरुप्रोन्नतं उच्छ्रितचित्रध्वजं कात्यायनीगृहं नयनविषयमकरोत्। ताम्भगवतीं प्रणम्य, स्तोत्रैः संस्तुत्य, गन्धपुष्पैरभ्यर्च्य किमेतदिन्द्रजालमित्याश्चर्यात्तदग्रतः समुपाविशत्।

तावदेव देव्यग्रगतप्रभामण्डलान्तरात् सहसा दिव्यकन्यैकोद्घाट्य कवाटकं निरगात्। सेन्दीवराक्षी वदनेन विधुं विडम्बयन्ती, स्मितेन सुमनांसि परिहसन्ती, स्वाङ्गमार्दवेन मृणालसूत्रमपि न्यग्भावयन्ती, रामासहस्रपरिवृता देवीगर्भगृहमविशत्, तथैव

प्रभामण्डले प्रविशन्तीं तां विलोक्य सोऽपि तत्र पुनः प्रविश्यापरमेव पुरवरमवलोकयामास। तत्र च मणिपर्यङ्कनिषण्णां तामुपेत्य पार्श्वे उपाविशद्दिङ्मूढ इव। सा हि तथाविधमनवस्थितधीविभवं तमवलोक्य चेटीनाम्मुखेषु दृशं निधाय सङ्केतेन करणीयं समादिशत्। इङ्गितज्ञास्तास्तमवादिषुः—'अतिथिस्त्वमिहास्माकं यतोऽस्मत्स्वामिनीकृतमातिथ्यं भजस्व। उत्तिष्ठ, स्नाहि, ततश्च भुङ्क्ष्वेति।' तच्छ्रुत्वा सोऽप्याशान्वितः कथञ्चिदुत्थाय ताभिः प्रदर्शितायामुद्यानवापिकायां निमग्नस्तत्क्षणादेव ताम्रलिप्त्यामुदतिष्ठच्चण्डसिंहनृपोद्यानवापीमध्यात्।

अकस्मादेव तत्रात्मानमुपलभ्याचिन्तयद्—'अहो! किमेतत्? क्व तदुद्यानम्? क्व च तद्दिव्यं पुरम्? क्व च सुधासारसमं तस्या दर्शनम्, क्व चानुपदमेव तद्विश्लेषमहाविषम्? स्वप्नोऽपि नायम्, विनिद्रो हि मेऽनुभवः। ध्रुवमेव ताभिर्दिव्यकन्यकाभिर्मूढोऽस्म्यहं वञ्चितः।' एवं ध्यायन्नुन्मत्त इव तदुद्याने परिबभ्राम।

तदवस्थन्तमवलोक्योद्यानपालाश्चण्डसिंहमहीभृतं व्यजिज्ञपन्। तदाकर्ण्योद्भ्रान्तः स नरपतिः स्वयमेत्य तादृशन्तमवालोकयत्। सान्त्वयित्वा चापृच्छत्—'सखे! किमेतत्? क्व प्रस्थितः? क्व च त्वं प्राप्तः?' सोऽपि सत्त्वशीलो नृपतये सर्वं स्ववृत्तान्तमवर्णयत्। भूपतिस्तदाकर्ण्य मनस्यचिन्तयत्—

'हन्त वीरोऽपि मत्पुण्यैः कामेनैष विडम्बितः।
आनृण्यं गन्तुमेतस्य लब्धो ह्यवसरो मया॥'

इति विचार्य स महीपतिः समवदत्—'एवं चेत्तर्हि मुञ्च शुचम् त्वदभीप्सितसिद्धावहमस्मि शक्तः।' इत्याश्वास्य स्नानादिना तमुपाचारयत्।

अथापरेद्युर्मन्त्रिषु निजराज्यभरं विन्यस्य तेन समं प्रवहणारूढस्तद्दर्शितपथोऽम्बुधिमध्यं प्राप्य प्राग्वदेवोत्थितं महाध्वजं विलोक्य तेन सत्त्वशीलेन स नृपतिरभिहितः—'नरेन्द्र! सोऽयं दिव्यप्रभावो ध्वजः समुत्थितः, मयि मग्ने देवेनापि मामनुसरताऽत्र मङ्क्तव्यम्।' राजापि तथैव तत्रात्मानं निक्षिप्यान्तर्मग्नस्तद्दिव्यं पुरं प्राप। साश्चर्यो भूपतिस्तत्पुरस्थां देवीं प्रणम्य ससत्त्वशीलस्तामुपास्त। तावदेव सखीजनसङ्गता सा रूपिणीव प्रभा दिव्यकन्या ततः प्रभामण्डलकान्निर्गता। 'इयं सा सुमुखी' इति तेनोक्ते 'अस्यामस्य परिष्वङ्गो युक्त' इति नृपोऽपि स्वीचकार। सापि तं राजानं शुभशारीरलक्षणं वीक्ष्य पुरुषातिशयं मत्वा पूजायै अम्बिकाधाम प्राविशत्। नृपोऽपि सत्त्वशीलमादायोद्यानमगात्।

अथ चासुरकन्यका सम्पाद्य सपर्याविधिं, सत्पतिप्राप्तिं याचित्वा, देव्या गर्भगृहान्निर्गत्य, सखीमात्मनो रहस्यधारिणीमवादीत्—'सखि! योऽसौ पुरुषविशेषो मया व्यलोकि, गवेष्यतां क्वास्ते सः।' एवं तयोक्ते तदीया सखी विचित्योद्यानवर्तिने तस्मा आतिथ्यग्रहणाय प्रह्वा सती स्वस्वामिनीनिदेशं न्यवेदयत्। तदाकर्ण्य स वीरनृपतिः सहेलन्तदग्रहणेच्छुस्तां न्यषेधत्। तद्वदेव च सख्या श्राविता सा दैत्यकन्यका तमुदारतमं मत्वा, मनुजदुर्लभेऽप्यातिथ्ये निःस्पृहात्मनस्तस्य धैर्यपाशेन समाकृष्यमाणेव,

तत्कालावधि पत्यर्थं विहितस्य देवीवरिवस्याविधेः परिपाकसमर्पितं पितरमेव तं मत्वा स्वयमेवोद्यानमगच्छत्। शकुनिकलरवैराल-पन्तमिव, वातोद्वेल्लितलताभुजैरालिङ्गन्तमिव तरुपतितकुसुमकुलैः समभ्यर्चन्तमिव तमाक्रीडमुपगम्य सप्रश्रयमातिथ्यग्रहणाय नृप-मभ्यार्थयत्। तत्प्रार्थितोऽवनिपतिरभ्यवदत्—'सुन्दरि! अनेन मत्सुहृदा वर्णितां ध्वजपथप्राप्यां परमाद्भुतकेतनां भगवतीं कात्यायनीं द्रष्टुमिहागतोऽहमस्मि। सा हि मया साक्षात्कृता, तथैवातर्कितोपगता त्वमपि। कान्यात्रातिथ्यार्थिता मम' इति।

एवमुक्ता सा कन्यकाऽब्रवीत्—'तर्हि द्वितीयं मे त्रिजगदद्भुतं पुरं वीक्षितुं कृपां विधेहि।' तदाकर्ण्य विहसता नरपतिनाऽभाणि, 'तन्माहात्म्येन समं तस्याः स्नानवापिकायाश्चमत्कृतिरपि मयै-तन्मुखादाकर्णिता।'

ततो हि सा मर्मण्युपहतेवावादीत्—'देव! मैवमादिश, नाहं विडम्बनशीला, का वा पूज्ये विडम्बना? अहं हि त्वदुत्कर्षमा-हात्म्येन किङ्करीकृताऽस्मि, तेन हि मेऽभ्यर्थनाभङ्गं मा कुरुष्व।'

एतच्छ्रुत्वा तथेत्युक्त्वा सत्त्वशीलसखः स महीवल्लभस्तया सह प्रभामण्डलोपान्तं गत्वाऽपावृतकपाटं तदन्तःस्थमपरं पुरं प्रविश्य, महार्हे रत्नासने समुपवेशितो यथोचितमर्घ्यादिपूजानन्तरं तया सादरमवादि—

'अहमस्मि कालनेमेर्महासुरेन्द्रस्य कन्या। पिता हि मे समरे चक्रायुधेन हरिणा स्वः प्रापितः। एतच्च पुरद्वयं मे पैतृकं विश्वकर्म-

कृतं नात्र जरामृत्यू बाधेते। इदानीञ्च त्वम्मे पिता अहञ्च सपुरा सविभवा त्वदाज्ञावशवर्तिनी' इति।

एवमर्पितसर्वस्वां तामवनिजानिरवोचत्—'यद्येवं तर्हि मया त्वमस्मै गुणिने वीराय सुहृदे बान्धवाय च सत्त्वशीलाय दत्ताऽसि।' मूर्तेनेव देवीप्रसादेन नृपेणैवमादिष्टा सा गुणवती विनम्रा तामाज्ञामग्रहीच्छिरसा।

ततश्च कृतार्थं कृततत्पाणिग्रहं समुपलब्धासुरपुरैश्वर्यं सत्त्वशीलं स मेदिनीपतिरभाणीत्—'सखे! भुक्तयोरामलकयोरेकम्मया ते संशोधितं द्वितीयतश्चासंशुद्धादिदानीमपि नानृणोऽस्मि'इति। प्रणमन्तं तमेवमुक्त्वा स दैत्यकन्यामगदत्—'पुत्रि! मार्गो म इदानीं प्रदर्श्यतां येन निजनगरीं प्राप्नुयाम्।' एवंवादिनं महीवल्लभं साऽसुरेन्द्रतनयाऽपराजितं नाम खड्गं जरामृत्युहरञ्चैकमनुपमं फलं दत्त्वा व्यसर्जयत्। नरेन्द्रोऽपि तद्वस्तुद्वयं गृहीत्वा तया प्रदर्शितायां तस्यामेव वाप्यां मग्नः स्वोद्यानवापिकात उन्मग्नः क्रमेण संसिद्धसर्वकामोऽभवत्। सत्त्वशीलश्च दैत्येन्द्रपुरस्य राज्यमशात्।

[वेतालकथा

—ooo—

: ४ :

मगधेशमालवेशयोः सम्परायः

[संस्कृत-साहित्य में गद्य के तीन प्रमुख आचार्य माने जाते हैं — दण्डी, बाण और सुबन्धु। उनमें से दण्डी पदलालित्य के लिए सुप्रसिद्ध हैं। अनुप्रास की छटा, प्रवाहरूप बहती हुई सहज सुगम भाषा तथा मनोहर पदों का चयन एवं कथोपकथन की हृदयङ्गम शैली दण्डी की अपनी एक विशेषता है। ये रीतिवाद के आचार्य हैं तथा 'इष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली' को काव्य मानने वाले हैं। इनका समय ईसा की छठी शताब्दी माना जाता है। साहित्यशास्त्र पर इनकी रचना काव्यादर्श एक प्रामाणिक ग्रन्थ है। इसके अतिरिक्त दशकुमारचरित तथा अवन्तिसुन्दरी ये दो गद्य-काव्य इनकी कीर्तिमुकुट के उज्ज्वल मणि हैं।

प्रस्तुत अंश दण्डिरचित दशकुमारचरित का है जिसके नायक राजवाहन हैं। संकलित अंश में नायक के पिता मगधेश्वर राजहंस के मालवपति मानसार के साथ युद्ध का वर्णन है जिसमें प्रथम बार राजहंस का विजय तथा दूसरी बार पराजय हुआ। प्रस्तुत अंश में वीररस प्रधान है और भाषा ललित होते हुए भी ओजस्विनी तथा पाञ्चाली रीति में उपनिबद्ध है।]

कदाचिन्नानाविधमहदायुधनैपुण्यरचितागण्यजन्यराजन्यमौलि-पालिनिहितनिशितसायको मगधनायको मालवेश्वरं प्रत्यग्रसङ्ग्राम-

घस्मरं समुत्कटमानसारं मानसारं प्रति सहेलं न्यक्कृतजलधिनिर्घोषाहङ्कारेण भेरीभाङ्कारेण हठिकाकर्णनाक्रान्तभयचण्डिमानं दिग्दन्तावलवलयं विघूर्णयन्निजभरनमन्मेदिनीभरेणायस्तभुजगराजमस्तकबलेन चतुरङ्गबलेन संयुतः सङ्ग्रामाभिलाषेण रोषेण महताऽऽविष्टो निर्ययौ। मालवनाथोऽप्यनेकानेकपयूथसनाथो विग्रहः सविग्रह इव साग्रहोऽभिमुखीभूय भूयो निर्जगाम। तयोरथ रथतुरगखुरक्षुण्णक्षोणीसमुद्भूते करिघटाकटस्रवन्मदधाराधौतमूले नव्यवल्लभवरणायागतदिव्यकन्याजनजवनिकापटमण्डप इव वियत्तलव्याकुले धूलीपटले दिविषद्ध्वनि धिक्कृतान्यध्वनिपटहध्वानबधिरिताशेषदिगन्तरालं शस्त्राशस्त्रि हस्ताहस्ति परस्पराभिहतसैन्यं जन्यमजनि। तत्र मगधराजः प्रक्षीणसकलसैन्यमण्डलं मालवराजं जीवग्राहमभिगृह्य कृपालुतया पुनरपि स्वराज्ये प्रतिष्ठापयामास।

ततः स रत्नाकरमेखलामिलामनन्यशासनां शासदनपत्यतया नारायणं सकललोकैककारणं निरन्तरमर्चयामास। अथ कदाचित्तदग्रमहिषी 'देवेन कल्पवल्लीफलमाप्नुहि' इति प्रभातसमये सुस्वप्नमवलोकितवती। सा तदा दयितमनोरथपुष्पभूतं गर्भमधत्त। राजापि सम्पन्न्यक्कृताखण्डलः सुहृन्नृपमण्डलं समाहूय निजसम्पन्मनोरथानुरूपं देव्याः सीमन्तोत्सवं व्यधत्त।

एकदा हितैः सुहृन्मन्त्रिपुरोहितैः सभायां सिंहासनासीनो गुणैरहीनो ललाटतटन्यस्ताञ्जलिना द्वारपालेन व्यज्ञापि—'देव! देवसन्दर्शनलालसमानसः कोऽपि देवेन विरच्यार्चनार्हो यतिर्द्वारदेशमध्यास्ते' इति। तदनुज्ञातेन तेन स संयमी नृपसमीपमनायि।

भूपतिरायान्तं तं विलोक्य सम्यग्ज्ञाततदीयगूढचारभावो निखिलमनुचरनिकरं विसृज्य मन्त्रिजनसमेतः प्रणतमेनं मन्दहासमभाषत—'ननु तापस! देशं सापदेशं भ्रमन्भवाँस्तत्र तत्र भवदभिज्ञातं कथयतु' इति। तेनाभाषि भूभ्रमणबलिना प्राञ्जलिना—'देव! शिरसि देवस्याज्ञामादायैनं निर्दोषं वेषं स्वीकृत्य मालवेन्द्रनगरं प्रविश्य तत्र गूढतरं वर्तमानस्तस्य राज्ञः समस्तमुदन्तजातं विदित्वा प्रत्यागमम्। मानी मानसारः स्वसैनिकायुष्मत्तान्तराये सम्पराये भवतः पराजयमनुभूय वैलक्ष्यलक्ष्यहृदयो वीतदयो महाकालनिवासिनं कालीविलासिनमनश्वरं समाराध्य तपःप्रभावसन्तुष्टादस्मादेकवीरारातिघ्नीं भयदां गदां लब्ध्वाऽऽत्मानमप्रतिभटं मन्यमानो महाभिमानो भवन्तमभियोक्तुमुद्युङ्क्ते। ततः परं देव एव प्रमाणम्' इति। तदालोच्य निश्चिततत्कृत्यैरमात्यै राजा विज्ञापितोऽभूत्—'देव! निरुपायेन दैवसहायेन योद्धुमरातिरायाति। तस्मादस्माकं युद्धं साम्प्रतमसाम्प्रतम्। सहसा दुर्गसंश्रयः कार्यः' इति। तैर्बहुधा विज्ञापितोऽप्यखर्वेण गर्वेण विराजमानो राजा तद्वाक्यमकृत्यमित्यनादृत्य प्रतियोद्धुमना बभूव। शितिकण्ठदत्तशक्तिसारो मानसारो योद्धुमनसामग्रीभूय सामग्रीसमेतोऽक्लेशं मगधदेशं प्रविवेश। तदा तदाकर्ण्य मन्त्रिणो भूमहेन्द्रं मगधेन्द्रं कथञ्चिदनुनीय रिपुभिरसाध्ये विन्ध्याटवीमध्येऽवरोधान्मूलबलरक्षितान्निवेशयामासुः। राजहंसस्तु प्रशस्तवीतदैन्यसैन्यसमेतस्तीव्रगत्या निर्गत्याधिकरुषं द्विषं रुरोध। परस्परबद्धवैरयोरेतयोः शूरयोस्तदा तदालोकनकुतूहलागतगगनचराश्चर्यकारणे रणे वर्त्तमाने

जयाकाङ्क्षी मालवदेशरक्षी विविधायुधस्थैर्यचर्याञ्चितसमरतुलितामरेश्वरस्य मगधेश्वरस्य तस्योपरि पुरा पुराराातिदत्तां गदां प्राहिणोत्। निशितशरनिकरशकलीकृतापि सा पशुपतिशासनस्यावन्ध्यतया सूतं निहत्य रथस्थं राजानं मूर्च्छितमकार्षीत्। ततो वीतप्रग्रहा अक्षतविग्रहा वाहा रथमादाय दैवगत्याऽन्तःपुरशरण्यं महारण्यं प्राविशन्। मालवनाथो जयलक्ष्मीसनाथो मगधराज्यं प्राज्यं समाक्रम्य पुष्पपुरमध्यतिष्ठत्।

[दशकुमारचरितम्

—∞⋄∞—

: ५ :

अच्छोदं सरः

[कादम्बरी संस्कृत गद्य का एक अनुपम भूषण है, इसकी आभा ने संस्कृत साहित्य को चिरस्थायी प्रकाश से अनुगृहीत किया है। वर्त्तमान उपन्यास-शैली का यह एक सर्वोच्च निदर्शन है। इसके रचयिता महायशस्वी श्री बाणभट्ट हैं। ये थानेश्वर के अधिपति महाराज हर्षवर्द्धन के सभापण्डित थे। 'बाणस्तु पञ्चाननः' यह उक्ति उनके कविकेशरी होने का परिचायक है। इनकी कथोपकथन की शैली बड़ी मनोरञ्जक होकर प्रधान कथा में अन्तर्कथाओं का रुचिर प्रयोग करती हुई 'अद्भुत' का निर्वाह बड़ी कला के साथ करती है। इनकी भाषा प्रौढ, ओजस्विनी तथा समासबहुला है, लेख की रीति प्रायशः गौड़ी है जो शोणनद के तटवर्त्ती प्रान्त के निवासी कवि के सर्वथा अनुगुण है। परन्तु इनकी प्रौढ रचना पाश्चात्य आलोचकों को कम रोचक हुई है जो स्वाभाविक ही है। प्रस्तुत अंश इसी कादम्बरी से उद्धृत किया गया है जिसमें एक मनोहर सरोवर का वर्णन है। कथा की अनुनायिका गन्धर्वपुत्री महाश्वेता यहाँ अपनी माता के साथ स्नान के लिये उपस्थित होती हैं और वहीं उन्हें अपने हृदयेश्वर मुनिकुमार पुण्डरीक के प्रथम दर्शन का सौभाग्य प्राप्त होता है।]

तस्य तरुखण्डस्य मध्यभागे मणिदर्पणमिव त्रैलोक्यलक्ष्म्याः स्फटिकभूमिगृहमिव वसुन्धरादेव्याः, जलनिर्गमनमार्गमिव सागरा-

णाम्, निस्यन्दमिव दिशाम्, अंशावतारमिव गगनतलस्य, कैलास-मिव द्रवतामापन्नम्, तुषारगिरिमिव विलीनम्, चन्द्रातपमिव रसतामुपेतम्, हराट्टहासमिव जलीभूतम्, त्रिभुवनपुण्यराशिमिव सरोरूपेणावस्थितम्, वैडूर्यगिरिजालमिव सलिलाकारेण परिणतम्, शरदभ्रवृन्दमिव द्रवीभूयैकत्र निस्यन्दितम्, आदर्शमिव प्रचेतसः, स्वच्छतया मुनिमनोभिरिव सज्जनगुणैरिव हरिणलोचनप्रभाभिरिव मुक्ताफलांशुभिरिव निर्मितम्, अनिलोद्धूतजलतरङ्गसीकरधूलि-जन्मभिः सर्वतः संस्थितैः संरच्यमाणमिवेन्द्रचापसहस्रैः, प्रतिमा-निभेनान्तःप्रविष्टसजलचरकाननशैलनक्षत्रग्रहचक्रवालं त्रिभुवन-मुद्भिन्नपङ्कजेनोदरेण नारायणमिव बिभ्राणम्, आसन्नकैलासावतीर्णस्य च शतशो भगवतः खण्डपरशोर्मज्जनोन्मज्जनक्षोभचलित-चूडामणिचन्द्रखण्डच्युतेनामृतरसेन जलक्षालितवामार्धकपोलगलि-तलावण्यप्रवाहानुकारिणा मिश्रितजलम्, उपकूलतमालवनप्रतिबि-म्बान्धकारिताभ्यन्तरैर्दृश्यमानरसातलद्वारैरिव सलिलप्रदेशैर्गभीर-तरम्, दिवाऽप्युपजातनिशाशङ्कैश्चक्रवाकमिथुनैः परिह्रियमाणनीलो-त्पलवनगहनम्, असकृत्पितामहपरिपूरितकमण्डलुपरिपूतजलम्, अनेकशो वालखिल्यकदम्बककृतसन्ध्योपासनम्, बहुशः सलिला-वतीर्णसावित्रीभग्नदेवार्चनकमलसहस्रम्, सहस्रशः सप्तर्षिमण्डल-स्नानपवित्रीकृतम्, सर्वदा सिद्धवधूधौतकल्पलतावल्कलपुण्योद-कम्, उदकक्रीडादोहदागतानां च गुह्यकेश्वरान्तःपुरकामिनीनां मकरकेतुचापचक्राकृतिभिरतिविकटैरावर्तिभिर्नाभिमण्डलैरापीत-सलिलम्, क्वचिद्वरुणहंसोपात्तकमलवनमकरन्दम्, क्वचिद्दिग्गज-

मज्जनजर्जरितजरन्मृणालदण्डम्, क्वचित्र्यम्बकवृषभविषाणकोटि-खण्डिततटशिलाखण्डम्, क्वचिद्यममहिषशृङ्गशिखरविक्षिप्तफेन-पिण्डम्, क्वचिदैरावतदशनमुसलखण्डितकुमुदखण्डम्, यौवनमिवो-त्कलिकाबहुलम्, उत्कण्ठितमिव मृणालवलयालङ्कृतम्, महापु-रुषमिव मीनमकरकूर्मचक्रप्रकटलक्षणम्, अमृतमथनसमयमिव तीरकासारावस्थितशितिकण्ठपीयमानविषम्, कृष्णबालचरितमिव तटकदम्बशाखाधिरूढहरिकृतजलप्रपातक्रीडम्, मदनध्वजमिव मक-राधिष्ठितम्, दिव्यमिवानिमिषलोचनरमणीयम्, अरण्यमिव विजृ-म्भमाणपुण्डरीकम्, कंसबलमिव मधुकरकुलोपगीयमानकुवलया-पीडम्, मलयमिव चन्दनशिशिरवनम्, अतिमनोहरमाह्लादनं दृष्टेरच्छोदं नाम सरो दृष्टवान्।

[कादम्बरी

: ६ :

सङ्गतेः प्रभावः

[वर्त्तमान युग में भी संस्कृत साहित्य की परम्परा अक्षुण्ण चली आ रही है। आधुनिककाल में भी महाकाव्य, खण्डकाव्य, नाटक, नाटिका, कथा, आख्यायिका आदि विविध रूप के गद्य तथा पद्य काव्यों की रचनाएँ अधिकाधिक उपलब्ध होती हैं। आधुनिक संस्कृत साहित्य बड़े उच्चकोटि के काव्यों को प्रस्तुत कर रहा है। वर्त्तमान कविगण की शैली प्राचीन महाकवियों की परम्परा का अनुसरण करते हुए भी वर्त्तमान युग की समस्याओं तथा वातावरण को यथावत् चित्रित करती है। आधुनिक युग के महाकवियों की भ्राजमान विद्वन्मण्डली में परिगणित प्रमुख साहित्यकारों में आशुकवि महामहोपाध्याय शङ्करलाल का स्थान कहीं उच्च है। ये विगत शताब्दी के महाकवि तथा सौराष्ट्र के अन्तर्गत मोरवी राज्य के आश्रित विद्वान् थे। इन्होंने सात नाटक, दो कथाएँ तथा अनेक मुक्तकों की रचनाएँ कीं जो प्रायः उपलब्ध हैं। इनका गद्य परम मनोहर, ललित तथा उपदेशप्रद है। इन्होंने स्त्रीशिक्षा की महत्ता को अङ्कित करते हुए चन्द्रप्रभाचरित नामकी कथा का निर्माण किया। रचना तथा कथोपकथन की शैली बाण, दण्डी जैसे सिद्ध गद्य-कवियों की सी है। प्रस्तुत अंश इसी चन्द्रप्रभाचरित से उद्धृत किया है जिसमें महादेवियों के द्वारा महिलासमाज के समक्ष सङ्गति के प्रभाव पर प्रवचन दिया गया है।]

निखिलानामश्रेयसां पराकाष्ठा दुःसंङ्गतिर्निखिलानां श्रेयसां परा सीमा च सत्सङ्गतिरित्यनुभूतमनुजनुर्मया युवाभ्यां च। दुःसङ्गतिर्हि वध्यशिला सर्वविद्यानां, महामारी सर्वकलानाम्, उच्चाटनविद्या सद्गुणानाम्, वशीकरणविद्या दुर्गुणानाम्, आकर्षणविद्या दुर्नयानाम्, स्तम्भनविद्या दुरभिमानस्तम्भानाम्, अध्ययनशाला दुराचाराणाम्, ज्वलनज्वाला सन्मतिबाललतानाम्, हिमसंहतिः सद्विचारसरसीरुहाणाम्, अकालकालमेघमाला कुलीनताकुलहंसीनाम्। न खलु लोकत्रयेऽपि तत्पश्यामि दुःखं न यत्सम्पाद्यते दुःसङ्गत्या। शतशो देवाः सहस्रशो दानवा लक्षशो रक्षयक्षोरगाप्सरोगन्धर्वाः कोटिशो मानवाश्च दुःसङ्गत्या दुर्दशाविवशाः कृता इति प्रतिपुराणेतिहासं सुप्रसिद्धमेव। दुर्जनसङ्गत्याऽनेके विद्वांसोऽपि मूर्खोपहास्यास्पदतामुपगता, अनेके विवेकिनोऽप्यविवेकिनामप्युपालम्भपात्रतां याता, अनेके विनयवन्तोऽप्यविनयनिलयानामप्यग्रेसरतां प्रयाता, अनेके कुलीना अप्यकुलीनगणनागणनीयतामुपयाताः। अनया हि दुःसङ्गत्या कति कति निपुणा अपि निपुणताया उत्तमा अप्युत्तमतायाः प्रामाणिका अपि प्रामाणिकताया धीरा अपि धीरताया महात्मानोऽपि महात्मतायास्तपस्विनोऽपि तपस्वितायाः सुशीला अपि सुशीलतायाः साधवोऽपि साधुतायाः सुखिनोऽपि सुखसम्पदः प्रतिष्ठावन्तोऽपि प्रतिष्ठाया राजानोऽपि राजतायास्त्वरितं परिभ्रंशिताः किलास्मिन्निलावलये विलोक्यन्ते। मनुजनुषां मनोनिकुञ्जान् यदा यदा दुःसङ्गदावानलज्वालामाला विकराला व्याकुलयन्ति तदा तदा निर्मूला भवन्त्यामूलतः परिम्लाननिखिलाङ्गलावण्याः सुशी-

लतासरलतासुजनतादयालुतासुज्ञतागुणज्ञताबाललताः परिशुष्यन्ति सत्यामृतसरः परिदह्यन्ते सौहार्दसन्तोषमार्दवोपवनभवनानि त्रास-तरला उड्डीयोड्डीय यथाभिलषितानि दिगन्तराणि प्रयान्ति सद्गुण-गणपवित्रपतत्त्रिणः, सद्योऽतिशुष्कतां बिभर्ति सभ्यताकदलीवनं प्रणाशमनुभवन्ति चानुवेलं नम्रतापुष्पलताः। दुःसङ्गतिपिशाच्या-वेशविवशाशया नैहिकं सुखमनुभवन्ति नामुष्मिकं वा, नैहिकं हितमवगच्छन्ति नामुष्मिकं वा, नैहिकं श्रेयः कुर्वन्ति नामुष्मिकं वा, न स्वीयान् पश्यन्ति न परकीयान् वा, न सत्यं जानते नासत्यं वा, न कृत्यं विन्दन्ति नाकृत्यं वा, न हेयमवधारयन्ति नोपादेयं वा, नैतावदेव यानि यानि दुःखानि यानि यानि पापानि यानि यानि दुर्लक्षणानि यानि यानि च दुराचरणानि सन्ति लोके तानि तानि सर्वाणि तेषां हृदयालयेषु परितः प्रसरन्ति। तत एव कल्याणा-भिलाषिणा न स्वप्नेऽपि दुःसङ्गतिपिशाची परिशीलनीया यतः सा विषवल्लरी दूरस्थानपि नानाविधानर्थपात्रतामुपनयति किं पुनस्तदाश्रयकरान्नरानसङ्ख्यानर्थनिधानतां नयतीति वक्तव्यम्।

प्रसिद्ध एव त्रिलोक्यां तथैवान्यतः सत्सङ्गतेरुत्तमतमः परिणामोऽपि प्रसिद्धतम एव प्रस्फुरति सर्वतः। तथाहि। सर्वाभीष्टसमर्पणप्रणयिन्याः सत्सङ्गतिदेव्या महिमा न केनापि वर्णयितुं पार्यते। सत्सङ्गतिर्हि जन्मभूमिः सद्विद्याकल्पलतानां, रोहणाचलाचला सद्गुणरत्नानां, वशीकरणविद्या सत्कलाकुल-विलासिनीनाम्, उच्चाटनविद्या दुर्गुणपिशाचानाम्, आकर्ष-णविद्या सर्वविनयानां, स्तम्भनविद्या कामादिवैरिवर्गस्य,

अध्ययनशाला सद्विचाराणां, दिव्यौषधिः सद्बुद्धिबाललतानां, सुरापगा कुलीनताकलहंसीनाम् । न खलु भुवनत्रयेऽपि तत्सुखं विलोकयामि न यत्सुसङ्गत्या सम्पाद्यते । अनेके देवा दानवा मानवा रक्षोयक्षोरगाप्सरोगन्धर्वविद्याधरचारणाः सत्सङ्गत्यैवोत्तमपदभाजः सम्बभूवुरिति प्रतिपुराणेतिहासं प्रसिद्धमेव । कति कति जगत्यस्मिन्नविद्वांसोऽपि विद्वन्मान्या, विनयविधुरा अपि विनयधुरीणा, अकुलीना अपि कुलीना, विकला अपि सकला, अधमा अप्युत्तमा, अधीरा अपि धीरा, निर्दया अपि दयार्द्रा, निर्लज्जा अपि सलज्जा, निष्प्रतिष्ठा अपि सप्रतिष्ठा, दुराचरणा अपि सदाचरणा, उद्धता अपि नम्राः, समदा अप्यमदाः, क्रूरा अप्यक्रूराः, परुषहृदया अपि मृदुलहृदया, दुर्जना अपि सज्जनाः, कुटिला अपि सरला, रङ्करङ्का अपि दीनदीना अपि राजानो महाराजा राजाधिराजाश्च नानया सत्सङ्गत्या स्वकीयाप्रतिमप्रभावेण निर्मिताः । यदा यदा चास्मन्मनोनिकुञ्जेषु सत्सङ्गतिसुधावृष्टिर्विजृम्भते तदा तदा फलिता भवन्ति प्रफुल्लितसर्वाङ्गाः सुशीलता-सरलता-सज्जनता-दयालुता-विद्वत्ता-सभ्यताऽऽर्यताकल्पलताः, परिपूर्यन्ते सत्यामृतसरांसि, मनोनयनानन्दतामुद्वहन्ति सन्तोषसौहार्दमार्दवार्जवलतामण्डपाः, परितो विहरन्ति सानन्दसन्दोहं सद्गुणगणपवित्रपतत्रिणः, पुष्यन्ति सभ्यताकदल्यः, परितः प्रोल्लसन्ति प्रणयपुष्पप्रकरनताश्च नम्रतापुष्पलताः । सत्सङ्गतिकामदुघामहिम्नि न कश्चिदभिज्ञोऽनभिज्ञस्तस्या लाभो हि नाल्पानां पुण्यानां परिणामः । सत्सङ्गत्यैव जनो जानाति हिताहितसत्यासत्यकृत्याकृत्यहेयोपादेयानि

सम्पादयत्यैहिकामुष्मिकश्रेयांसि, करगताः करोति च चतुर्विधा अपि मोक्षलक्ष्मीः । नैतावदेव यानि यानि सुखानि, यानि यानि पुण्यानि, यानि यानि सल्लक्षणानि, यानि यानि च सदाचरणानि लोकेषु श्रूयन्ते तानि तानि सर्वाणि सत्सङ्गतिस्वर्गापगावगाहविमलाशयानां महाशयानां मनोमन्दिरेषु समुल्लसन्ति । अत एव श्रेयोऽभिलाषिणा जनेन सत्संगतिरेव सेवनीया । ससङ्गतिरेव बलं सत्सङ्गतिरेव गतिः सत्सङ्गतिरेव मतिः सत्सङ्गतिरेव सर्वस्वं चेति मन्तव्यम् । कति कति सद्गुणाः कति कति लाभाः कति कति चाभ्युदया विलसन्ति सत्सङ्गत्यामिति नैकयाऽनया रसनया वक्तुं शक्तोऽहम् । किं बहुना सर्वेषां सद्गुणानां सर्वासां सद्विद्यानां सर्वासां सम्पदां सर्वेषामभ्युदयानां सर्वेषामानन्दानां सर्वेषां सुकृतानां सर्वेषां स्नेहानां सर्वेषां श्रेयसां च मूलं सत्सङ्गतिरेवास्तीति निर्विवादम् ।

[चन्द्रप्रभाचरितम्

: ७ :

शौर्यमहिमा

[महाकवि बाणभट्ट की अनुपम लेखनी ने संस्कृत-साहित्य को हर्षचरित एक अद्वितीय उपायन प्रदान किया है। इसमें महाराज हर्षवर्धन के पुण्यचरित्र का चित्रण ही नहीं वरन् साथ-साथ महाकवि ने अपनी आत्मकथा का निरूपण सुन्दर रूप से किया है। अतएव यह ग्रन्थ आख्यायिका का एक सुन्दर निदर्शन है। इसमें तत्कालीन समाज का चित्रण भी बड़ा सजीव है।

प्रस्तुत अंश हर्षचरित से उद्धृत किया गया है। सुगृहीतनामा महाराज पुष्पभूति के महाप्रयाण के पश्चात् हर्षदेव के ज्येष्ठ भ्राता राज्यवर्धन पर राज्यभार आया, परन्तु उसे सम्हालने से पूर्व ही अपनी बहिन श्रीमती राज्यश्री के पति का युद्ध में वीरगति पाने तथा शत्रु द्वारा बहिन के वन्दीकृत करने का समाचार पाकर वे पितृशोक को भूल शत्रु का दलन करने चल पड़े। वहाँ गौड़ देश के अधिपति ने विश्वासघात कर कपट-पूर्वक राज्यवर्धन का वध कर डाला। इस समाचार को पाकर माता के सती हो जाने के कारण उनके वियोग से विकल, पितृशोक से विह्वल, बहनोई की मृत्यु से पीड़ित, बहिन के वन्दीकरण से आकुल तथा भ्रातृ-वध से अमर्षित हर्षदेव ने एकदम शत्रुओं का दलन करना ही उचित समझ दिग्विजय के लिये प्रयाण की ठान ली। उस समय सेनापति

सिंहनाद यहाँ शौर्य की महिमा का गान कर युद्धवीर हर्षदेव के उत्साह को उद्दीपित करते हैं।]

अपकारिणं गौडाधिपमभियियासोः महाराजहर्षस्य भ्रातृवधामर्षितस्य 'क्वेदानीं यास्यति दुर्बुद्धि'रित्यभिदधतः पितुरपि मित्रं सेनापतिररणिरमर्षाग्नेरैश्वर्यं शौर्यस्य जीवितं जिगीषुताया अङ्कुशो दुर्मदानां कुलगुरुर्वीरगोष्ठीनां सन्निधावेव समुपविष्टः सिंहनादनामा स्वरेणैव दुन्दुभिघोषगभीरेण समररसमानयन् विज्ञापितवान्—

'देव ! न कश्चित्कृताश्रयया मलिनया मलिनतराः कोकिलया काका इव कापुरुषा हतलक्ष्म्या विप्रलभ्यमानमात्मानं न चेतयन्ते। श्रियो हि दोषान्धतादयः कामला विकाराः। छत्रच्छायान्तरितरवयो विस्मरन्त्यन्यं तेजस्विनं जडधियः। किं वा करोतु वराकः येनातिभीरुतया नित्यपराङ्मुखेन न तु दृष्टान्येव कपोलपुलकपल्लवितकोपानलानि कुपितानां तेजस्विनां मुखानि। नासौ तपस्वी जानात्येवं यथाभिचारा इव विप्रकृताः सद्यः सकलकुलप्रलयमुपहरन्ति मनस्विनः। जलेऽपि ज्वलन्ति ताडितास्तेजस्विनः। सकलवीरगोष्ठीबाह्यस्य तस्यैवेदमुचितमनुत्तारनिरयनिपातनिपुणं कर्म। मनस्विनां हि प्रधनप्रधानधने धनुषि ध्रियमाणे सति च कमलाकलहंसीकेलिकुवलयकानने कृपाणे कृपणोपायाः पयोधिमथनप्रभृतयोऽपि श्रीसमुत्थानस्य किं पुनरीदृशाः। येषां च धात्रा धरित्रीं त्रातुं नियुक्ताः स्वयमसमर्था इव कुलिशकर्कशभुजपरिघप्रहरणहेतोरुद्गिरन्ति गिरयोऽपि लोहानि ते कथमिव बाहुशालिनो मनसाऽपि विमलयशोबान्धवा ध्यायेयु-

रकार्यम्। सर्वग्रहाभिभवभास्वराणां हि सुभटकराणामग्रतो दिग्ग्रहणे पङ्गवः पतङ्गकराः। महामहिषशृङ्गतरङ्गभङ्गभङ्गुरभीषणान्तराला लोकप्रवादमात्रेण दक्षिणाशा परमार्थतो भटभ्रुकुटिरधिवासो यमस्य। चित्रं च यदुन्मुक्तसिंहनादानां सहसा साहसरसरोमाञ्च-कण्टकनिकरेण सह न निर्यान्ति सटाः शूराणां रणेषु। द्वयमेव च चतुःसागरसम्भूतस्य भूतिसम्भारस्य भाजनं प्रतिपक्षदाहि दारुणं वडवामुखं वा महापुरुषहृदयं वा। तेजस्विनः सकलानन-वाप्य पयोराशिसहजस्य कुतो निवृत्तिरूष्मणः। वृथाविततविपुल-फणाभारो भुजङ्गानां भर्ता विभर्ति यो भोगेन मृत्पिण्डमेव केवलम्। अप्रतिहतशासनाक्रान्त्युपभोगसुखरसं तु रसाया दिक्कुञ्जरकरभार-भास्वरप्रकोष्ठा वीरबाहव एव जानन्ति। रविरिवोन्मुखपद्माकर-गृहीतपादपल्लवसुखेनाखण्डिततेजा दिवसान्नयति शूरः। कातरस्य तु शशिन इव हरिणहृदयस्य पाण्डुरपृष्ठस्य कुतो द्विरात्रमपि निश्चला लक्ष्मीः। अपरिमितयशःप्रकरवर्षी विकासी वीररसः। पुरःप्रवृत्तप्रतापप्रहताः पन्थानः पौरुषस्य। शब्दविद्रुतद्विषन्ति भवन्ति द्वाराणि दर्पस्य। शस्त्रालोकप्रकाशिताः शून्या दिशः शौर्यस्य। रिपुरुधिरशीकरासारेण भूरिव श्रीरप्यनुरज्यते। बहुनर-पतिमुकुटमणिशिलाशाणकोणकषणेन चरणनखराजिरिव राजताऽ-प्युज्ज्वलीभवति। अनवरतशस्त्राभ्यासेन करतलानीव रिपुमुखानि श्यामीभवन्ति। विविधव्रणबद्धपट्टकशतैः शरीरमिव यशोऽपि धवलीभवति। कवचिषु रिपूरःकवाटेषु पात्यमानाः पावकशिखा-मिव श्रियमपि वमन्ति निष्ठुरा निस्त्रिंशप्रहाराः। यश्चाहितहत-

स्वजनो मनस्विजनो द्विषद्योषिदुरस्ताडनेन कथयति हृदय-दुःखम् । परुषासिलतानिपातवनेनोच्छ्वसिति निरुच्छ्वसितशत्रु-शरीराश्रुधारापातेन रोदिति विपक्षवनिताचक्षुषा ददाति जलं स श्रेयान्नेतरः । न च स्वप्नदृष्टनष्टेष्विव क्षणिकेषु शरीरेषु निबध्नन्ति बन्धुबुद्धिं प्रबुद्धाः । स्थायिनि यशसि शरीरधीर्वीराणाम् । अनवरतप्रज्वलिततेजःप्रसरभास्वरस्वभावं च मणिप्रदीपमिव कलुषः कज्जलमलो न स्पृशत्येव तेजस्विनं शोकः । स त्वं सत्त्ववता-मग्रणीः प्राग्रहरः प्राज्ञानां प्रथमः समर्थानां प्रष्ठोऽभिजातानामग्रे-सरस्तेजस्विनामादिरसहिष्णूनाम् । एताश्च सततसन्निहितधूमाय-मानकोपाग्नयः सुलभासिधारातोयतृप्तयो विकटबाहुवनच्छायो-पगूढा धीरताया निवासशिशिरभूमयः स्वायत्ताः सुभटानामुरः-कवाटभित्तयः । यतः किं गौडाधिपेनैकेन । तथा कुरु यथा नान्योऽपि कश्चिदाचरत्येवं भूयः । सर्वोर्वीश्रद्धाकामुकानामलीक-विजिगीषूणां सञ्चारय चामराण्यन्तःपुरपुरन्ध्रिनिश्वसितैः । उच्छिन्धि रुधिरगन्धान्धगृध्रमण्डलच्छादनैश्छत्रच्छायाव्यसनानि । क्षपय तीक्ष्णाज्ञाऽक्षरक्षारपातैर्जयशब्दश्रवणकर्णकण्डूः । अपनय चरणन-खमरीचिचन्दनचर्चाललाटलेपैरनमितस्तिमितमस्तकस्तम्भविका-रान् । उद्धर करदानसन्देशसन्दंशैर्द्रविणदर्पोष्मायमाणदुःशीलली-लाशल्यानि । भिन्धि मणिपादपीठदीधितिप्रदीपिकाभिः शुष्कसुभ-टाटोपभ्रुकुटिबन्धान्धकारान् । अदय सततसेवाञ्जलिमुकुलितकरसं-पुटोष्मभिरिष्वासनगुणकिणकार्कश्यानि । येनैव ते गतः पिता पिता-महः प्रपितामहो वा तमेव मा हासीस्त्रिभुवनस्पृहणीयं पन्थानम् ।

अपहाय कुपुरुषोचितां शुचं प्रतिपद्यस्व कुलक्रमागतां केसरीव कुरङ्गीं राजलक्ष्मीम्। देव, देवभूयं गते नरेन्द्रे दुष्टगौडभुजङ्गजग्धजीविते च राज्यवर्धने वृत्तेऽस्मिन्महाप्रलये धरणीधारणायाधुना त्वं शेषः। समाश्वासय अशरणाः प्रजाः। क्ष्मापतीनां शिरःसु शरत्सवितेव ललाटन्तपान् प्रयच्छ पादन्यासान्। अपि च हते पितर्येकाकी तपस्वी मृगैः सह संवर्धितः सहजब्राह्मण्यमार्दवसुकुमारमनाः कृतनिश्चयश्चण्डचापवनाटनिटांकारनादनिर्मदीकृतदिग्गजं गुञ्जज्ज्याजालजनितजगज्ज्वरं समग्रमुद्यतमेकविंशतिकृत्वः कृत्तवंशमुत्खातवान् राजन्यकं परशुरामः। किं पुनर्नैसर्गिककायकार्कश्यकुलिशायमानमानसो मानिनां मूर्धन्यो देवः। तदद्यैव कृतप्रतिज्ञो गृहाण गौडाधमजीवितध्वस्तये धनुः। न ह्ययमरातिरक्तचन्दनचर्चाशिशिरोपचारमन्तरेण शाम्यति परिभवानलपच्यमानदेहस्य देवस्य दुःखदाहज्वरः सुदारुणः’ इत्युक्त्वा व्यरंसीत्॥

[हर्षचरितम्

—∞—

: ८ :

आर्यावर्तः

[संस्कृत-साहित्य में अनेक कथाएँ गद्य-पद्यात्मक रूप में भी रचित हैं। गद्य-पद्य उभय जिसमें उपलब्ध होते हैं ऐसे काव्य-भेद को चम्पू कहते हैं। चम्पूकाव्यों के रचयिताओं में श्री त्रिविक्रमभट्ट का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इनकी भाषा प्रौढ तथा श्लेष से अलङ्कृत होती है। वर्णन का क्रम रोचक परन्तु कहीं कहीं जटिल है। इनके द्वारा रचित शिलालेख तथा अन्य काव्य भी उल्लिखित हैं। इतिहासज्ञ इनका काल ईसा की दसवीं शताब्दी का पूर्व भाग बताते हैं।

प्रस्तुत अंश त्रिविक्रमभट्ट के द्वारा निर्मित दमयन्तीकथा से लिया गया है। इसमें निषधेश्वर महाराज नल एवं कुण्डिनपुर के राजा भीम की पुत्री दमयन्ती की पुण्यकथा का वर्णन है। सङ्कलित अंश में हमारे देश आर्यावर्त्त के गौरव का वर्णन संक्षेप में किया गया है। इस अंश में शब्दों का चयन इस प्रकार किया गया है जिसमें विच्छेद करने पर भिन्न अर्थ की उपलब्धि होती है। सभङ्गश्लेप के चमत्कार से सुशोभित गद्य-रचना का सुगम निदर्शन करते हुए महाकवि ने देश की तत्कालीन सामाजिक स्थिति के चित्र की सामान्य रूपरेखा भी उपस्थित की है।]

अस्ति समस्तविश्वम्भराभोगभास्वल्ललामलीलायमानः समानः सेव्यतया नाकलोकस्य, ग्राम्यकविकथाबन्ध इव नीरसस्य मनोहरः, भीम इव भारतालङ्कारभूतः, अनधीतव्याकरण इवादृष्टप्रकृतिनिपातोपसर्गलोपवर्णविकारः, पशुपतिजटाबन्ध इव विकसितकनककमलकुवलयोच्छालितरजःपुञ्जपिञ्जरितहंसावतंसया प्रचुरचलच्चकोरचक्रवाककारण्डवमण्डलीमण्डिततीरया भगीरथभूपालकीर्तिपताकया स्वर्गगमनसोपानवीथीयमानरिङ्गत्तरङ्गया गङ्गया पुण्यसलिलैः प्लावितश्चन्द्रभागालङ्कृतैकदेशश्च, सारः सकलसंसारचक्रस्य, शरण्यः पुण्यकारिणाम्, आरामो रामणीयककदलीवनस्य, धाम धर्मस्य, आस्पदं सम्पदाम्, आश्रयः श्रेयसाम्, आकरः साधुव्यवहाररत्नानाम्, आचार्यभवनमार्यमर्यादोपदेशानामार्यावर्तो नाम देशः।

यस्मिन्ननवरतधर्मकर्मोपदेशशान्तसमस्तव्याधिव्यतिकराः पुरुषायुषजीविन्यः सकलसंसारसुखभाजः प्रजाः। तथाहि। कुष्ठयोगो गान्धिकापणेषु, सन्निपातस्तालेषु, ग्रहसङ्क्रान्तिर्ज्योतिःशास्त्रेषु, क्षयस्तिथिषु, गुल्मवृद्धिर्वनभूमिषु, गलग्रहो मत्स्येषु, गण्डकोत्थानं पर्वतवनभूमिषु, शूलसम्बन्धश्चण्डिकायतनेषु दृश्यते न प्रजासु।

यत्र चतुरगोपशोभिताः सङ्ग्रामा इव ग्रामाः, तुङ्गसकलभवनाः सर्वत्र नगा इव नगरप्रदेशाः, सदाचरणमण्डनानि नूपुराणीव पुराणि, सदानभोगाः प्रभञ्जना इव जनाः, पीवरोधसः सरित इव गावः, सतीव्रतापदोषाः सूर्यद्युतय इव कुलस्त्रियः।

यत्र च मनोहारिसारसद्वन्द्वास्तत्पुरुषेण द्विगुना चाधिष्ठिताः कादम्बरीगद्यबन्धा इव दृश्यमानबहुव्रीहयः केदाराः। अपि च—

भवन्ति फाल्गुने यत्र वृक्षशाखा विपल्लवाः।
जायन्ते न तु लोकस्य कदापि च विपल्लवाः॥

यत्र सौराज्यरञ्जितमनसः सकलसमृद्धिवर्धितमहोत्सवपरम्परारम्भनिर्भराः सततमकुलीनं कुलीनाः, प्राप्तविमानमप्राप्तविमानभङ्गाः, कतिपयवसुविराजितमनेकवसवः समुपहसन्ति स्वर्गवासिनं जनं जनाः।

कथं चासौ स्वर्गान्न विशिष्यते!

यत्र गृहे गृहे गौर्यः स्त्रियः, महेश्वरो लोकः, सश्रीका हरयः, पदे पदे धनदाः सन्ति लोकपालाः। केवलं न सुराधिपो राजा, न च विनायकः कश्चित्।

यत्र च गुरुव्यतिक्रमं नक्षत्रराशयः, मात्राकलहं लेखशालिकाः, मित्रोदयद्वेषमुलूकाः, अपत्यत्यागं कोकिलाः, बन्धुजीवविघातं ग्रीष्मदिवसाः कुर्वन्ति न जनाः।

किम्बहुना

देशः पुण्यतमोद्देशः कस्यासौ न प्रियो भवेत्।
युक्तोऽनुक्रोशसम्पन्नैर्यो जनैरिव योजनैः॥

[दमयन्तीकथा

—oo※oo—

: ९ :

शिवराजस्य दिल्लीम्प्रति प्रस्थानम्

[ऐतिहासिक महापुरुषों के जीवन-चरित्र का वर्णन संस्कृत गद्य साहित्य को वर्त्तमान युग की देन है। आधुनिक विद्वानों ने मध्ययुगीन वीरपुरुषों की शौर्यगाथाएँ ललित गद्य द्वारा प्रस्तुत की हैं। चरितकाव्य की परम्परा के प्रवर्त्तक महाकवियों में श्री अम्बिकादत्त व्यास अग्रगण्य हैं। आपका जन्म काशी-निवासी एक गौड़ ब्राह्मण परिवार में हुआ। ये विक्रम की बीसवीं शताब्दी में हुए और विद्यारसिकों ने इनकी वर्णन-शैली तथा संस्कृत भाषा पर अद्भुत अधिकार की भूरि भूरि प्रशंसा की है। इनकी भाषा में आजकल के बोलचाल के शब्दों के संस्कृत पर्याय तथा प्रचलित वाग्धाराओं का प्रयोग पाठकों के लिये बड़ा उपकारी है। उनका शिवराजविजय नामक चरितकाव्य तथा सामवत नाटक उच्च कोटि की रचनाएँ है।

प्रस्तुत अंश उनके शिवराजविजय से उद्धृत किया गया है। महाराष्ट्र के उज्ज्वल वीर छत्रपति शिवाजी अम्बेरराज जयसिंह के प्रोत्साहन से जब मुगल-सम्राट् से भेंट करने दिल्ली गये तब का वर्णन सङ्कलित सन्दर्भ का विषय है।]

समयोऽयं महामहिम-हिमाच्छन्न-शिशिरस्य। ऋतुनैतेन दिनानां परिणाहः, तमीनां तनुता, पयोजानां प्रसन्नता, सलिलानां

सुखावगाह्यता च लुण्ठिता। भगवान् भास्करो दक्षिणस्यां निर्वासितः। गगनतलं च प्रायिक-प्रालेयपातैर्धूम-धूसरितमिव विहितम्। साम्प्रतं तैल-ताप-तूलिका-ताम्बूलादिष्वेव कृतादरा जनाः। जगत्प्राणो जगति प्राणिनो जडीकुर्वन् जवेन वहति। आखण्डल-दिक्कुण्डलतामात्रमुपेयुषः शुकतुण्डच्छवेः मार्तण्ड-मण्डलस्य अचण्डानां मरीचीनां कोमलमुत्तापं सिषेवयिषूणां शाद्वलेन पथा प्रयातानां वन्यजन्तूनां पाद-क्षेप-विहता नैशीथ-मिहिका-प्रचय-भङ्गा एव, आखेटक्रीडा-कौतुकिनां पन्थानमुप-दिशन्ति। दिने सवेग-घोटक-धावनेन न लक्षितो हिम-पात-व्रात-व्रातः, निशीथिन्यान्तु वरूथिनीयं मन्थरिता।

तदेवं स्थिरप्रतिज्ञास्ते प्रस्थिताः पथिषु प्रायो गोधूमयवाऽऽढ-कीमसूराऽतसी-सर्षप-हरिमन्थक-हरितानि परिपक्वधान्य-कपिशानि निविडेक्षुदुर्गमाणि छिद्यमान-मुद्ग-माष-वल्लाणि क्षेत्राणि निरीक्ष-माणाः, तत्क्षणच्योतितेक्षुरसं रसयन्तः कृत्त-कलम-पुष्कल-पटलेषु वृषभावली-चालनेन धान्य-पवन-कार्यं सम्पादयतां खट्वाः परि-त्यज्य सकौतुकं महाराष्ट्र-वीर-मण्डलमवलोकयतां खेट-खर्वट-वासिनां निरीक्षणकौतुकमावहन्तः, सूच्यग्रैरहिफेन-फलानि निर्या-सार्थं घर्षयन्तीनां कलमान् कृन्ततीनामारण्यक-शुष्क-गोमयराशीं-श्चिन्वतीनां ग्राम्य-चेटीनां शिवराज-यशोमयानि गीतानि शृण्वन्तश्च कतिपयैरेव सप्ताहैरहोमदनगरं, विराट-देशम्, इन्द्रपुरम्, उज्जयि-नीम्, गोपालपुरम्, मथुरां च समुल्लङ्घ्य अङ्गर्तु-रसेन्दुमित-वैक्रमाब्दस्य (१६६६) वसन्तारम्भे दिल्लीनिकटं प्रापुः।

दिल्लीतः कियद्दूरे यमुनातटे शिविर-सन्निवेशो गिरिग्राम-समीपे विहितः, जयसिंहप्रेषिताः सादिनश्च महाराष्ट्राधीशसमागम-संवादकथनाय यमुनामुत्तीर्य दिल्लीमाययुः।

रात्रौ सर्वेषु सुप्तेषु, एकाकी महाराष्ट्रमहनीयो माल्यश्रीकसहायो बहिर्निर्गत्य यमुनातटे प्रालेयस्नाते पाषाण-खण्डे समुपविष्टः। कदाचित् श्यामश्यामैस्तरङ्गपटलैर्वहन्तीं यमुनाम्, कदाचन गगन-महासागर-फेन-पटलायितं तारका-पटलं पश्यन्, कर्हिचिच्च दीपप्रचयसूचित-प्रासाद-मण्डलां यवनराजधानीं निभालयन् मुहूर्तं निभृतमेवावतस्थे। परतः समवोचत्—"मित्र! इयमेव राजधानी युधिष्ठिरादीनां क्षत्रियकुल-भूषणानाम्। अत्रैव पृथ्वीराजोऽपि चरमवीर उवास। एतस्या एव नाम श्रावं श्रावं हीरात-काम्बोज-गान्धार-समरकन्द-देशवास्तव्याः स्वप्नेष्वपि 'पलायध्वं! भोः पलायध्वम्' इति विलेपुः। सैवेयमधुना तद्देशवासिभिरेव कदर्थ्यते। अहह! तत्रैवैष सनातनधर्मस्य तिरस्कारः। अत्रैव मया प्रवेष्टव्यम्। भगवान् भव्यं विदधातु।" तावदकस्मादुद्भूता यमुनातटादश्रावि कस्याप्युदारगम्भीरा वाणी 'सर्वथा भव्यं विदधातु' इति। एवमुच्चरता हस्ते पुष्पं गृहीत्वा स्वामिनः सविधे समागच्छता राघवाचार्येण दत्ताशीर्महाराष्ट्रेश्वरः शिबिरे सकल-कर्तव्यपरम्परापरायणमना रात्रिमत्यवाहयत्।

परेद्युर्विहितस्नानभोजनादिक्रियैर्मित्रगणैः सह समुल्लोचतले समुपविष्टो महाराष्ट्रराजो दिल्लीश्वरदर्शनाय नेतुं समायातेनाम्बरराज-कुमारेण रामसिंहेन सल्लँपन् मुहूर्तमास्त। पश्चात् 'राजसाक्षात्कारस्य

समयः संवृत्त' इत्युक्तवति रामसिंहे, नववस्त्राणि धारयन् चन्द्रहासं समास्रंसयन् महाराष्ट्रपतिः 'अस्माभिः केन यानेन गन्तव्यमि'त्यगादीत् ।' 'पुष्परथमानीतवानस्मी'त्युक्तवति कुमारे महाराष्ट्रराजस्तु 'दिल्लीकलङ्केनैतेन स्वपुत्रो न प्रेषित आनेतुम्, अपमान एषः' इति मनसि चिन्तयन्, माल्यश्रीक-गौरसिंहादिभिः सज्जो भूत्वा, रामेण सहोत्थाय शिविराद् बहिरागत्य पुष्परथमारूढः। तस्मिन्नेव तत्सम्मुखे कुमार-रामसिंह उपविष्टः। गौरसिंह-माल्यश्रीकादयोऽपि भूषण-भूषितान् सौवर्णवल्गानश्वानारूढाः। कतिपये रामसिंहसादिनोऽपरे च शतं महाराष्ट्रसादिनोऽपि सज्जा इतश्चेतश्च धावन-संवेग-महोत्साह-खुरखुरायित-खुराणां कथं कथमपि संयम्यमानानां कुसुमैरिव फेनप्रपातैः परिपूजितवसुन्धराणां धावनधुरन्धराणां सैन्धवानां हेषाभिरध्वनीनान् बधिरानकार्षुः। तावत् सपदि भूषणकविरागत्य, प्रलम्बकवितयाऽऽशीराशीनुदीर्य राजहस्ते साक्षतानि कुसुमानि दत्त्वा, तदनुमत्या स्वयमपि मौक्तिक-मालाकलित-कण्ठं सौवर्ण-किरण-कलित-वर्णद्वय-मध्यं राजत-कुसुमावलिशोभितलाङ्गूलं श्याममेकं प्रकाण्डं वाजिनमारूढवान्। समङ्गलशब्दं च सर्वेऽपि प्रस्थिताः, क्षणेनैव च ते कालिन्दीसेतुं प्राप्ताः। ततो दृष्टवान् महाराष्ट्रपतिर्यद्भास्वान् मृदुलमयूखः संवृत्य भुवमभिपतति। अभ्रंलिहानां कलितापरमेघाडम्बराणां समुद्धूतध्वजानां दिल्लीहर्म्याणां छाया कलिन्दनन्दिन्याः श्यामतां द्विगुणयति। अभितः सेतुं तनवः, महत्यः, सपटलाः, अपटलाः, साट्टाः, निरट्टाः, हंस-मयूर-वर्त्तक-सारस-

कारण्डवादिविविधाकाराः, चित्र-विचित्रिताः, समञ्जीर-क्षेपण-झणत्काराकुलीकृत-कमठाः सहस्रशो नौका इतश्चेतश्च संसरन्ति। तटस्थाः, तरणिस्थाः, सेतावपि च यातायातपराः, सहस्रशो नागराश्च कन्धरं परिवर्त्य चक्षुषी विस्फार्य आत्मानं पश्यन्ति, साङ्गुलिनिर्देशं च स्वमित्राणि 'सोऽयं सोऽयम्' इति दर्शयन्ति।

ततः स यमुनां प्रणम्य, मनस्येव कथितवान् यत्—

'भगवति ! कृष्णप्रिये ! यथा कालियसदनं प्रविश्यापि भगवान् कृष्णः काकोदरं निर्मथ्य निरगात्, यथा च नन्दो ग्राहेण गृहीतस्त्वज्जले निमग्नोऽपि बकविद्वेषिणोऽनुग्रहेण सकुशलं परावृत्तः, तथैव चेदहमपि दिल्लीतः कुशलेन स्वपुण्यपुरीं परावर्ते, तद्दुग्धधारा-सहस्रैः कमलानां लक्षेण लक्षेण च घृतदीपानां त्वामभ्यर्चयिष्ये' इति।

तावत्ते सेतुमुल्लङ्घ्य, परं तटमायाता दिल्लीनगरप्राकारमुपागताः। तत्र च प्रघाणस्थैः परिवर्तितग्रीवैर्लोलोष्णीष-बन्धैर्भटैः, आपणोपविष्टैः स्तब्धशङ्कुलैः स्वर्णकारैः, कर्णार्पित-लेखनीकैश्चित्रकारैः, समुपेक्षित-तुला-दण्डैर्वणिग्भिः, विशिथिल-स्खलित-मानदण्डैः पटविक्रयिभिः, रुद्धसीवनैः स्यूतिकारैः, विस्मृतहार-ग्रन्थनैर्मालाकारैः, घण्टापथे विचरद्भिः, समाकृष्टवल्गैः सादिभिः, आसादित-प्रान्तैः पर्यटकैः, आशीर्वचनस्फुरितोष्ठैर्ब्राह्मणैः, परिवर्जित-क्रीडैर्बालकैः, गवाक्षस्थैः शिथिलितव्रीडैरङ्गुल्यग्रापसारिततिरस्करिणीविच्छेदप्रहितकटाक्षावलोकनैः कुलयुवतिजनैश्च सकौतुकं निरीक्ष्यमाणः, 'कोऽयम्, कुतोऽयम्, सोऽयम्, स एवायम्, वीरोऽयम्,

वीरवरोऽयम्, महाराष्ट्रराजोऽयम्, दुर्धर्षोऽयम्, चिरश्रुतोऽयम्, शास्तिखान-शास्ति-शास्त्राज्ञोऽयम्, विजयपुर-विजय-दीक्षितोऽयम्, गोलखण्ड-खण्डनपण्डितोऽयम्, सुरत-वशीकरण-मन्त्र-मान्त्रिकोऽयम्, अम्बरपुरन्दर-प्रीति-परवशोऽयम्, सम्राजमुपसर्पति, अम्बर-राजकुमारेणैँ सह नीयते। कीदृशमेतस्योष्णीष-बन्धनम्? कीदृशा अस्य सादिनः? स भूषणकविरप्यश्वारूढः सहचरः' इति परितः परिवर्तिनां बहूनां विविधालापान् मन्दमर्द्धोदीरितान् किञ्चित् किञ्चित् कर्णे कुर्वाणः, कैश्चित् कुक्कुटाण्ड-गणनासक्तैः, इतरैर्मञ्चा-रूढैर्धूम्र-पान-परायणैः, अपरैरक्षक्रीडाऽऽसक्तैः, यवनैः 'सोऽयं समागतोऽयं समासादितोऽयं, पर्वतोन्दुरुमेनमेवाऽऽचक्षते सम्राजः। दृश्यताम्, किं भदति, सम्राजः कथमेतेन व्यवहरन्ति?' इति सक्रूर-कटाक्षं कथाविषयीक्रियमाणः, उभयतः काँश्चित् सझणत्कारं स्वापणे समुज्झितानां दीनाराणां गणनाऽऽसक्तान्, अपरान् रत्ननिचय-परीक्षण-प्रहित-सूक्ष्मेक्षणान्, इतरान् अलङ्कारक्रय-विक्रयव्यवहार-संसक्तान्, अन्याँश्च गवाक्षस्थ-गणिका-गण-भ्रू-भङ्ग-निहित-दृष्टीन् वीक्षमाणः सपरिजनो महाराष्ट्रराजो दिल्ली-मार्गान्तरं प्रविवेश।

[शिवराजविजयः

—ooXoo—

: १० :

राजवर्णनम्

[महाकवि सुबन्धु आचार्य दण्डी के परवर्ती तथा श्री बाणभट्ट के समकालीन माने जाते हैं। इनका यशस्वी समय ईसा की सप्तम शताब्दी का पूर्व भाग रहा होगा—ऐसा इतिहासकारों का मत है। गद्यकाव्य की मान्य कवित्रयी के ये मध्यमणि हैं। इनकी भाषा कुछ जटिल तथा विशेषकर श्लेषमयी होती है। प्रत्यक्षरश्लेष के प्रयोग का इन्हें स्वयं अभिमान रहा है। कथोपकथन का वैचित्र्य इनकी रचना में कम है; भाषा की प्रौढि इनकी प्रसिद्धि का मूल है। कहा जाता है सुबन्धु ने काव्य-लक्षण-सम्बन्धी एक प्रबन्ध तथा छन्दश्शास्त्र पर एक ग्रन्थ रचा था परन्तु केवल पूर्वाचार्यों के द्वारा उद्धृत सिद्धान्तों के अतिरिक्त इन ग्रन्थों का कोई भाग आज प्राप्य नहीं है। 'वासवदत्ता' नामक एक लघुकाय कथा ही इस समय उपलब्ध है जो उनके यशःशेष का प्रतीक है। प्रस्तुत अंश वासवदत्ता से ही लिया गया है जिसमें कथानायक राजकुमार कन्दर्पकेतु के पिता महाराज चिन्तामणि के सौराज्य का वर्णन है। संकलित अंश सुबन्धु की श्लेषानुप्राणित गद्य-शैली का परिचायक है।]

अभूदभूतपूर्वः सर्वोर्वीपतिचक्रचारुचूडामणिश्रेणीनिर्मलीकृत-चरणनखमणिर्नारायण इव सौकर्यसमासादितधरणिमण्डलः कंसा-रातिरिव जनितयशोदानन्दसमृद्धिर्जलनिधिरिव वाहिनीशतनायकः

हर इव महासेनानुगतो मेरुरिव विबुधालयो रविरिव छायासन्तापहरः विद्याधरोऽपि सुमना धृतराष्ट्रोऽपि गुणप्रियः क्षमानुगतोऽपि सुधर्माश्रितोऽतरलोऽपि महानायको राजा चिन्तामणिर्नाम ।

यस्य च शासति धरणिमण्डलं छलनिग्रहप्रयोगो वादेषु, नास्तिकता चार्वाकेषु, परीवादो वीणासु, खलसंयोगः शालिषु, द्विजिह्वसङ्ग्रह आहितुण्डिकेषु, द्विजराजविरुद्धता पङ्कजानां, सूचीभेदो मणीनां, दुश्शासनदर्शनं भारते, करपत्रदारणं जलजानाम् । इत्थं नास्त्यवसरो वाचां पूर्वतरराजेषु ।

स पुनरन्य एव देवो न्यक्कृतसर्वोर्वीपतिचरितः । तथाहि— स हिमालयो नावश्यायोच्छलितो नोमायाजन्मने हितश्च । स हि मानी गिरिस्थितो वृषध्वजः । असौ सदागतिरवधूताखिलकान्तारः पावकाग्रेसरो न भोगोत्सुकः सुमनोहरश्च । स रत्नाकरोऽगाधः समर्यादः सदामृतमयः सपोतः । स चन्द्र इव क्षणदानन्दकरः कुमुदबन्धुः मित्रोदयहेतुस्सुमेरुरिव । यस्य च रिपुवर्गः सदापार्थोऽपि न महाभारतरणयोग्यः ।

अपि च स त्रिशङ्कुरिव नक्षत्रपथस्खलितः, शङ्करोऽपि न विषादी, पावकोऽपि न दहनः । नन्दगोप इव यशोदयाश्रितः, जरासन्ध इव घटितसन्धिविग्रहो, भार्गव इव सदानभोगो, दशरथ इव सुमित्रोपेतः सुमन्त्राधिष्ठितश्च, दिलीप इव सुदक्षिणानुरक्तो रक्षितगुश्च, राम इव जनित कुशलवयोरूपोच्छ्रायश्च ।

[वासवदत्ता

: ११ :

कुमारशिक्षणम्

[इस युग के प्रौढ गद्यलेखकों में पण्डितप्रकाण्ड श्रीविश्वेश्वर पाण्डेय का नाम सुप्रथित है । अल्मोड़ा-निवासी पर्वतीय विप्रकुल के भूषण पं० लक्ष्मीधर के घर काशी में आपका जन्म हुआ। बाल्यकाल से ही इनकी प्रखर प्रतिभा सरस्वती के अनुग्रह का परिचय देती थी। ये विलक्षण तार्किक तथा मार्मिक साहित्यिक एवं प्रौढ कवि हुए। इनकी लेखनी से प्रसूत लगभग २१ ग्रंथ यशःसन्तति के रूप में आज देदीप्यमान हैं। इनमें से अलङ्कारकौस्तुभ नामक अलङ्कार-शास्त्र का ग्रंथ एक उद्भट रचना है। वैसे ही इनकी मन्दारमञ्जरी नामक कथा एक हृदयहारिणी रचना है। पाठकवृन्द इनकी शैली में दण्डी-सुबन्धु-बाण तीनों के रूप का समन्वय पाते हैं तथा विविध रचना-मार्ग का रसास्वाद एकत्र ही कर सकते हैं।

प्रस्तुत अंश मन्दारमञ्जरी से सङ्गृहीत किया गया है। राजकुमार चित्रभानु को महामन्त्री बुद्धिनिधि सदुपदेश देते हैं जो बाणरचित शुकनासोपदेश की तुलना का है तथा जीवन के कटु सत्य का निखरा हुआ रूप चित्रित करता है।]

तं राजकुमारं चित्रभानुं कदाचिद्रहसि सविनयमासीनं सप्रणय-बहुमानं महामन्त्री बुद्धनिधिरवोचत्—'कुमार! निष्णात एवासि

नीतिशास्त्रेषु, परिचितान्येवं धर्मशास्त्रमर्माणि, आश्रित एव प्रश्रयः, आहित एवोत्साहः, तथापि स्नेहो वा राजादेशो वा स्वामिभक्तिर्वा स्वाधिकारो वाऽत्रापराध्यति, अतो न मामनभिधेयाभिधायितया ग्रहीतुमर्हसि। श्रूयतां महीभुजां वृत्तम्—

ते हि मृणालमृदुहृदया अपि भङ्गुरान्गुणान्नाङ्गीकुर्वन्ति, महापुरुषा अपि नोदारतां त्यजन्ति, विग्रहप्रीतयोऽपि यशस्येवानुरज्यन्ते चन्द्रवत्कलानिधयोऽपि न कलङ्कसङ्करतां लभन्ते, सरोवद्गभीरा अपि न पङ्ककलुषाशया भवन्ति, कर्णवद्धृतराष्ट्रोदयानुकूलवृत्तयोऽपि विजयं न विरुन्धन्ति। अपि च तेषां समविषमावगाहिनी बुद्धिरेव जयं जनयति, सर्वदा सर्वदिग्व्यापी गुणगण एव जनान् वशयति, शास्त्राण्येव विग्रहं विभूषयन्ति, बाहुरेव दानजलं विसृजति, माधुर्यमेव पदे प्रतिष्ठापयति, सच्चरित्रमेवोच्चशिरस्कतां सम्पादयति, अविच्छिन्नज्वलनः प्रताप एव प्रकाशमापादयति, यशोराशिरेव धावल्यं विभावयति। असन्तस्तु भीमस्वभावा अपि न धर्मोदयमपेक्षन्ते, पदवन्तोऽपि न गतिं लभन्ते, गुरुत्वहीना अपि पार्थिवा इत्युच्यन्ते, जलवन्नीचवृत्तयोऽपि न शीततां वहन्ति, इक्षुवद्ग्रन्थिला अपि न माधुर्यमुद्वमन्ति, चित्रवच्चारुचक्षुषोऽपि न किञ्चिद् विवेचयन्ति।

अपि च निभालनीयो वैभवस्य स्वभावः येन ज्ञानवतोऽपि द्वेषोऽधर्मो महामानत्वञ्चेति त्रयमुद्भवति। विभावनीयञ्च यौवनस्वरूपम्। तत्र हि गुरूपदेशास्तृणवद्बहिरेव परिप्लवन्ते, शास्त्रचित्रं

नावकाशं लभते। यौवनोदयो हि अशोकतरुरिव मलिनानि फलानि प्रसूते, महामातङ्ग इव मन्दतां धत्ते, निदाघदिवस इव तृष्णां जनयति, घन इव चपलोल्लासमुज्जीवयति, एकेन्दुरिवान्तर्मालिन्यञ्च समुल्लासयति। अवधार्यताञ्च लक्ष्मीः—इयं हि जडेष्वेव पदं निदधाति, लज्जमानेव दूरात्परिहरति विद्वांसं, न पुरुषाणां गुणदोषान् गणयति, आतपत्रच्छायावलम्बिनी अपरिचितातपेव तेजस्विना न संयुज्यते, स्थिरप्रकृतिषु लवमपि नावतिष्ठते। किञ्चेयं तुषारवृष्टिर्बुद्धिकमलिनीनां, भुजङ्गी परुषव्यवहारहालाहलानां, कुलविद्या कौटिल्यस्य, वसन्तवेला कामस्य, सौभाग्यसिद्धिर्लोभस्य, करिकुम्भस्थली मदाविर्भावस्य, विभावरी विवेकविवस्वतः, अमावास्या विनयसुधाकरस्य।

राज्यञ्च महाकूपारसमानमालक्ष्यताम्—तत्र केचिच्चैतन्यहीनाः प्रकृष्टप्रकाशा अपि मणय इव प्रणयं नावगणयन्ति, केचिद् भङ्गुरास्तरङ्गा इव भवन्ति।

तदेवंविधे परस्परनैरपेक्ष्येणापि अनर्थहेतूनां वयोविभवविद्यादीनां समवाये यथा मदिरा इव वामलोचना नोन्मादयन्ति मृगयासङ्गा न हृदयमङ्गारयन्ति, दम्भवृत्तयो न विप्रलम्भं सम्भावयन्ति, वस्तुस्वरूपतिरोधायकोऽन्धकार इवाविवेको नान्धयति, न लोभः परिहास्यतां नयति, मत्सरो न कुत्सयति, कृपणभावो न स्पृशति, नाहङ्कारः कलङ्कयति, विद्या न नर्तयति, प्रमादो नावसादयति, मूर्खपरिग्रहो न परिभवति, दुर्नीतिरिव निद्रा नाभिद्रवति, पिशाची-

वालसता नाभिक्रामति, वृथाचेष्टा न कदर्थयति, पैशुन्यं न प्रसरति, द्रोहो न मोहयति, वाक्पारुष्यं न पुष्यति; यथा च प्रजा न क्षीयन्ते, मित्राणि न शुष्यन्ति, दुर्जना न वर्धन्ते, अर्थिनो न कदर्थ्यन्ते, दुर्वृत्ता न विलसन्ति, महासाहसिका न प्रसरन्ति, तस्करा न प्रलपन्ति — तथा यतेथाः। अपि च भुवनव्यापिभिः स्वकीर्तिराजहंसैः समुन्मूलय विद्विषां चामरमृणालजालकं, निर्वापय परेषां प्रतापतनूनपातं, स्तम्भय वैरिणामाज्ञावचनानि, क्षपय विपक्षक्ष्माभृतां पक्षान्, सम्मार्जय तेषां महान्तमहङ्कारहालाहलं दुरवगाहतमेषु अष्टादशस्वेव द्वीपेष्विव तीर्थेषु विजयस्तम्भानिव यूपान् समारोपयाचलानिव चारानिति समभिधाय व्यरमत्।

[मन्दारमञ्जरी

: १२ :

वर्षारम्भः

[मध्ययुग में जैन-कवियों ने भी संस्कृत साहित्य की समृद्धि में बड़ा सहयोग प्रदान किया है। आचार्य हेमचन्द्र को तो प्रबन्धशत के निर्माण का गौरव प्राप्त है। सोमप्रभसूरि तथा मेरुतुङ्गाचार्य के पश्चात् कवि धनपाल का नाम उल्लेखनीय है। ये धारेश्वर के सभापण्डित थे, इनका काल ईसा की दशवीं शताब्दी का उत्तरार्ध माना जाता है। कवि धनपाल ने तिलकमञ्जरी नामक गद्यकथा लिखी है।जिसके अध्ययन से जैनधर्म की कथा-परम्परा से परिचय हो जाता है। रचना की शैली बाणभट्ट की प्रणाली का अनुकरण करती है। इनकी भाषा ललित एवं रोचक है। इसमें प्रकृति के दृश्यों का वर्णन स्थान-स्थान पर बड़ा मनोहर है।

प्रस्तुत उद्धरण तिलकमञ्जरी से लिया गया है। सङ्कलित अंश में वर्षाऋतु के आरम्भ समय का हृदयहारी वर्णन है।]

दृष्ट्वा च लोकमकाण्डवैरिणा घर्मर्त्तुनोपतप्यमानमुत्पन्नानुकम्पो निर्वापयितुमेव चक्रे जगत्यामवतारमखिलविश्वोपकारी वारिदागमः। प्रवर्त्तितप्रबलधारापङ्क्त्यो भङ्क्तुमिव जनस्य धारागृहस्पृहां क्षिप्र

मेवान्तरिक्षमाच्छादयाञ्चक्रुः। तमालतालपलासप्रकरनीलाः पयोमुचः सहचरीभिः सौदामिनीभिः सह विहायसि विहारलीलामिव वितेनुः। अविरलोद्भिन्नमरकतश्यामशाद्वला बभूव भूतधात्री। प्रथमजलधरासारशिशिराश्च निर्वापयितुमिवाङ्गतापं निर्वातुमारभन्त सन्ततामोदमकरन्दमांसलाः कदम्बमारुतः। मानसस्मरणसञ्जातरणरणकाः कौवेरीं दिशमभिप्रतस्थिरे राजहंसाः। प्रावृट्पयःपूरितासु विलाससरसीषु निममज्जुरम्भोजिनीवनानि। घनधाराभिवृष्टमूर्त्तयो जनतार्त्तिदर्शनदुःखिता इव दूरविनतैः पल्लवेक्षणैरम्बुकणिकाश्रुविसरमजस्रमसृजन्नुपवनद्रुमाः। प्रकृतिकर्कशानङ्गसंस्पर्शयोग्यानिव कर्त्तुमात्मनः करानन्तःसलिलेषु जलमुचां कुक्षिषु निचिक्षेप चण्डभानुः। निदाघापराधं क्षमयितुमिव वनदेवताभिरावद्धकुसुमाञ्जलिपुटान्यजायन्त केतकीकाननानि। विनोदयितुमिव जनारतिमनारतोदीरितमधुरकेकागीतिभिः समारम्भि ताण्डवमुद्दण्डबर्हमण्डलैर्गृहशिखण्डिभिः। विकसिताकुण्ठकलकण्ठचातककलकले कठोरदर्दुरारटितदारितश्रवसि विश्रुतापारवाहिनीपूरघूत्कारे घोरघनगर्जितारावजर्जरितरोधसि द्योतमानविद्युद्दामदारुणे प्रावृषेण्ये काले सान्द्रकुटजद्रुमामोदः प्रेरयति सर्वतः पथिकान् विधुरीभूतमनसः स्वस्वगृहान् प्रति सत्वरं प्रतिनिवर्त्तितुम्। पङ्कपटलाविलेषु पुरपरिसरे रम्यतलकुट्टिमेषु लीलालतामण्डपेषु तृणनिरुद्धाध्वसञ्चारेषु खण्डितयदृच्छाविहारकौतुकान् जनान् गृहाभ्यन्तरं विश्रान्तेषु यन्त्रधारागृहप्रवेशेषु मुद्रितेषु चन्दनचर्चाविधिष्वक्रियमाणेषु कमलकुमुदकुवलयशयनेषु हारकेयूरमेखलादिषु मृणालाभरणेष्वना-

रोप्यमाणासु ससलिलतालवृन्तकदलीपत्रवातेष्वदीयमानेषु दिनेषु भवनवलभीगवाक्षेषु वेणुवीणाविनोदमादरेण विदधानान् कलगीतैः पिकस्वरैराराध्यमानान् पुरतः प्रमुदितमयूरनृत्यलीलाभिः नितान्त-कान्तस्वान्तान् नितरां समाराधयन् प्रादुर्बभूव वर्षासमारम्भः ।

[तिलकमञ्जरी

—००৫০४০০—

शब्दार्थसंग्रहः

: १ :

तैत्तिरीय उपनिषद् की आनन्दवल्ली में ब्रह्मविद्या का स्वरूप बतलाया गया है। उसके पश्चात् यहाँ भृगुवल्ली में ब्रह्मविद्या के साधनों का वर्णन है। मानव की रचना में पाँच कोश होते हैं—अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय। प्राणी का जीवन अन्नमय है, अत एव अन्न की उपासना सर्वप्रधान है। 'अन्नं बहु कुर्वीत' अधिक अन्न का उत्पादन करो, अन्न को बहुत समझो (Grow more food) यही उपनिषद् का उपदेश है।

वारुणिः (वरुणस्य अपत्यं पुमान्) = वरुण का पुत्र। उपससार= निकट गया (और बोला)। भगवः = हे भगवन्! अधीहि (अध्यापय) = पढ़ाइये। अन्नं···वाचमिति = अन्न (शरीर) उसके भीतर प्राण (भोक्ता), और ज्ञान के साधन आँख और कान आदि, तथा मन (अन्तःकरण) और वाक् (कर्मेन्द्रिय) ये ब्रह्मज्ञान के द्वार हैं। यतः—जिस ब्रह्म से। यत्प्रयन्ति = विनाश होने पर जहाँ जाते हैं तथा अभिसंविशन्ति = लीन हो जाते हैं। विजिज्ञासस्व = पहिचानो।

अन्नादः = अन्न भक्षण करने वाला।

तपश्चर्या करने पर भृगु ने समझा (व्यजानात्) कि अन्न ही ब्रह्म है जिसमें 'यतो वा इमानि' में उक्त लक्षण पाये जाते हैं। वरुण ने उस बालक को पुनः तप करने को कहा, तप करने पर उसने प्राण को ब्रह्म समझा, तत्पश्चात् क्रमशः मन और विज्ञान को, तथा अन्त में आनन्द-

स्वरूप पुरुष को पहिचाना। सैषा भार्गवी वारुणी विद्या—यही भार्गवी (भृगु के द्वारा प्राप्त) विद्या है जिसे वरुण ने बतलाया। न परिचक्षीत = त्यागो मत।

परमे व्योम्नि प्रतिष्ठिता = यह विद्या (परमे व्योम्नि =) परब्रह्म में प्रतिष्ठित है। (ब्रह्म आकाशरूप कहा गया है—आकाशस्तल्लिङ्गात्)।

उक्त आख्यायिका भृगुवल्ली के नाम से प्रसिद्ध है जिसमें ब्रह्मज्ञान का मुखद्वार अन्न को बताकर अन्न की महिमा प्रकट की गई है।

—∞∞—

: २ :

विक्रमश्च उर्वशी च विक्रमोर्वश्यौ तदधिकृत्य कृतम् इति विक्रमोर्वशीयम् = विक्रम तथा उर्वशी के कथानक को लेकर रचित। महाराज पुरूरवा ने पराक्रम से उपार्जित उपाधि 'विक्रम' अपनाई थी।

हिमाद्रिप्रस्थे = हिमालय की चोटी पर। बदरीप्रख्यम् = 'बदरी' नामक। जुष्ट = सेवित। नरसखः नारायणः = नर और नारायण ये दो भगवत्स्वरूप हैं। नरसखः = नर का साथी। चिररात्राय (अव्यय) = दीर्घ काल तक। निबोध्य = जानकर। प्रत्यूहव्यूहः = विघ्नसमूह। प्रायस्यन् = (प्र + यस् , लङ्) = प्रयत्न किया। तुहिनकरः = चन्द्रमा। गलित = च्युत। अखर्वगर्वः = अदम्य अभिमान। लेखेन्द्रः (लेखानां देवानाम् इन्द्रः) = सुराधिप महेन्द्र। उपतिष्ठस्व = सेवा करो (उपपूर्वक स्था धातु देवपूजारूप अर्थ में आत्मनेपदी हो जाती है—उपाद्देवपूजायाम्)। प्रहरणम् = शस्त्र। अर्धपथे = मार्ग के बीच (पथः अर्धम् अर्धपथम् तस्मिन्)।

कुररी = एक भीरु पक्षिविशेष (Osprey)। द्रुतम् = शीघ्र। अभिद्रुतः = वेग से जाता हुआ। जयोदाहरणम् = विजयकीर्त्ति। शतक्रतुः = इन्द्र। अप्रतिरथः = अद्वितीय योद्धा।

तिरस्करिणी विद्या = अदृष्ट होने की विद्या (Invisibility)। अनपराद्धम् = निर्दोष। कृच्छ्रेण = कष्ट से। आमन्त्र्य = अनुज्ञा लेकर। भूमिका = रूप, पात्र। भावाभिनिवेशः = हृदय का आग्रह, मन का झुकाव।

गन्धमादनम् = हिमालय पर वर्त्तमान सुन्दर चोटी।
दारिका = कन्या। अप्रतिपद्यमाना = अस्वीकार करती हुई।
विधिः = आदेश। देवतासमयः = देवताओं का नियम।
मृगाङ्कमौलिः = चन्द्रशेखर, भगवान् शङ्कर।

और्वशेयः = उर्वश्याः अपत्यं पुमान् और्वशेयः (स्त्रीभ्यो ढक्) = उर्वशी का पुत्र, आयु। निर्यापय = लौटा दो।

विमर्दः = सङ्घर्ष। सांयुगीनः (संयुगे साधुः सांयुगीनः) = रण में उपयोगी। न्यसितव्यम् = त्यागना चाहिये, छोड़ें।

भद्रपीठे = मङ्गलासन, पीढे पर।

—oo:o:oo—

: ३ :

शिंशपापादपः = शीशम का वृक्ष (Ebony tree)। प्रशस्य (वि.) = प्रशंसा के योग्य। कर्णे कुरुष्व = सुनो।

पूः (स्त्री.)=नगरी। सङ्गराङ्गणम्=रणक्षेत्र। आहर्ता = छीनने वाला। सिंहद्वारे (७ ए.) = मुख्यद्वार (ड्योढ़ी) पर। दक्षिणाशातः = दक्षिण

दिशा से। कार्पटिकः = मशकची। अकरोत् चेतसि = सोचता रहता। अवसीदन्तम् (२ पृ.) = पीड़ित।

लगुडकरे (सति सप्तमी)=हाथ में दण्ड लिये। हारितसूकरः=शूकर को हाथ से खोकर। दिङ्मोहः = दिशा का भ्रम। पदातिः = पैदल। क्षुत्तृडर्दितेन (क्षुत् + तृट् + अर्दितेन) = भूख-प्यास से पीड़ित। रिरक्षुणा (रक्ष् + सन् + उ) = रक्षण करने का इच्छुक। वाताश्वः = वायु के समान तेज चलने वाला घोड़ा।

तथाविधमन्वाधावन्तम् = उस तरह पीछे पीछे दौड़ता हुआ। यथागतम् = जिससे आये थे (उस मार्ग को)। अवादि (वद्–कर्मणि लुङ्) = कहा गया। ललाटन्तपः = सिर तपाने वाला (Scorching)। सप्तसप्तिः = (सात घोड़े वाला) सूर्य। सोपरोधम् (क्रि. वि.) = रुकते हुए।

परिसरः = निकट। उत्तुङ्गः = ऊँचे। उदधिप्रिया = नदी। वाहः = घोड़ा। विपर्याणीकृत्य = जीन खोलकर। कृतविवर्तनम् = लोट लेने पर। शष्पम् = कोमल घास। वसनप्रान्तात् = कपड़े के पल्ले से। उन्मुच्य = खोलकर। हृद्य (वि.) = मनोहर, सरस। एतद्वृत्तिः = इन्हीं पर निर्वाह करता हुआ।

क्लिष्टमक्लिष्टम् = दुःख-सुख को।

अनुबन्धविशेषेण = खास आग्रह से। जग्धः (अद् + क्त) = भुक्त। अलमभ्यर्थितेन = बहुत कुछ कहे जाने पर। वसुभिः=द्रव्य से। अनृण (वि.)=ऋणमुक्त।

प्रवहणम् = नौका। अभ्रंलिहाग्रः = जिसका अग्रभाग गगन को स्पर्श करता था (Sky-scraping)। अतिवर्षैः = ज़ोर की वर्षा से।

आधोरणम् = अङ्कुश । प्रवहणद्विपः = नौकारूप हाथी । वीचिविप्लुतः= हिलोरें लेते हुए । वार्निधिः = समुद्र । प्राणपरीप्सुः = प्राणरक्षा का अभिलाषुक । अब्रह्मण्यमुदघोषयन् = बहुत बुरा बहुत बुरा—ऐसा कह कर निन्दा करने लगे ।

बद्धपरिकरः = कमर कसकर । निरपेक्षम् = परवाह न करते हुए । वहनम् = नौका । वातोर्मिचपेटिकाभिः = पवन से प्रेरित लहरियों की चपेट से । यादोमुखेषु = जलजन्तुओं के मुँह में ।

सोपानम् = सीढ़ी । उच्छ्रित = फहराते हुए ।

कवाटकम् = फाटक । विडम्बयन्ती = अनुकरण करती हुई । सुमनांसि (स्त्रीलिङ्गी नित्य बहुवचनान्त) = फूलों को । न्यग्भावयन्ती= तिरस्कृत करती हुई । रामा = स्त्री । पर्यङ्कः = पलंग । निषण्णा = (नि + सद् + क्त) = बैठी हुई । अनवस्थित = चकित । इङ्गितज्ञाः = संकेतों को समझने वाली । अवादिषुः=बोलीं ।

अनुपदम् (अव्यय) = दूसरे ही क्षण । उद्भ्रान्तः = व्याकुल ।

विडम्बितः = ठगा गया । शुचम् (२ ए०—शुच्—स्त्री०) = शोक को । उपचारयत् = उपचार किया ।

अपरेद्युः=दूसरे दिन । मङ्क्तव्यम् (मस्ज् + तव्य) = गोता लगाना चाहिये । परिष्वङ्गः = आसक्ति । युक्तः = ठीक ही है ।

गवेष्यताम् = ढूँढ़ो । विचित्य = खोजकर ।

तस्मा आतिथ्यं=तस्मै + आतिथ्यं । प्रह्वा = नम्र, प्रार्थना करती हुई । सहेलम्=लीलासहित, विनोदपूर्वक । वरिवस्या=पूजा । परिपाकः= परिणाम, फल । उद्वेल्लित (वि०) = कम्पित । आक्रीडः=उपवन ।

सप्रश्रयम्=विनय तथा स्नेहपूर्वक। अतर्कितोपगता=अचानक प्राप्त हुई।

अपावृत = खुला हुआ। महार्हें (७ पृ०) = बहुमूल्य।

स्वः = स्वर्ग को। प्रापितः = पहुँचा दिया गया।

अवनिजानिः (अवनिः जाया यस्य सः) = भूपति।

म इदानीम् = मे + इदानीम् (एचोऽयवायावः, लोपः शाकल्यस्य)। अशात् (शास् + लङ्—अन्यपुरुष एकवचन) = शासन किया।

—oo✻oo—

: ४ :

मगधराजः = मगधदेश के राजा, राजहंस। मालवेशः = मालव का राजा, मानसार। सम्परायः = युद्ध।

मुख्य वाक्य है:—ततः कदाचित् मगधनायको मानसारं प्रति सङ्ग्रामाभिलाषेण निर्ययौ।

नाना……सायको—मगधनायक का विशेषण। महं ददाति इति महदः = गौरव देने वाला। महदानि आयुधानि महदायुधानि। नानाविधानि महदायुधानि नानाविधमहदायुधानि। °युधेषु नैपुण्यं (निपुणस्य भावः); तेन रचितानि।

अगण्यानि (न गणितुं योग्यानि अगण्यानि) जन्यानि। नानाविध-महदायुधनैपुण्यरचितागण्यजन्यानि = कई प्रकार के बड़े-बड़े हथियारों से निपुणतापूर्वक लड़े हुए अगणित युद्ध।

मौलीनां पाली मौलिपाली = मस्तकों का समूह। राज्ञां समूहो राजन्यम्। राजन्यानां मौलिपाली राजन्यमौलिपाली।

निशिताश्च सायकाश्च निशितसायकाः। राजन्यमौलिपालिषु निहिता निशितसायका येन सः।

°जन्येषु °सायकः—(°युद्धों में) जिसने राजाओं की मस्तक-पंक्ति को अपने तीक्ष्ण बाणों का निशाना बनाया था।

निहित—नि + √धा ३ उ. + क्त=रखा। 'युद्धमायोधनं जन्यम्' इत्यमरः।

घसितुं शीलमस्य घस्मरः—'सृघस्यदः क्मरच्' = इच्छुक। प्रत्यग्र-संग्रामेषु घस्मरः = नये युद्ध की इच्छा वाला। तम्—मानसार का विशेषण।

समुत्कटमानसारं—मानसार का विशेषण। मानस्य सारः मानसारः दर्प का (सार) निचोड़। समुत्कटः मानसारः यस्य तम् = अत्यन्त दर्पयुक्त। मानं एव सारः यस्य सः मानसारः = मालवराज का नाम। यहाँ मानसार में यमक का एक सुन्दर उदाहरण है। हेलया सहितं सहेलम् = खेलते हुए। न्यकृत = तिरस्कृत।

जलधेः निर्घोषः जलधिनिर्घोषः, तस्मिन् अहङ्कारः जलधिनिर्घोषा-हङ्कारः = समुद्र का गर्जनसम्बन्धी गर्व। न्यक्कृतः जलधि···ङ्कारः येन न्यक्कृतजलधिनिर्घोषाहङ्कारः तेन—(भेरीझाङ्कार का विशेषण)। भेर्याः झाङ्कारः भेरीझाङ्कारः—तेन=भेरी की गूँज। हठिका···मानम्—'दिग्दन्ता-वलवलयम्' का विशेषण। हठिका=शोर। दन्तावलः=हाथी। विघूर्णयन्= घुमाते हुए। चतुरङ्गबलेन = पैदल, घुड़सवार, रथ और हाथी की सेना से। अनेकपः = हाथी। विग्रहः = युद्ध। सविग्रहः = मूर्त्तिमान्। साग्रहः = हठपूर्वक। जन्यम् = युद्ध। जवनिका = परदा। दिविषद्ध्वनि= दिवि सीदन्तीति दिविषदः (सप्तमी अलुक्) = देवता; दिविषदाम्

अध्वनि = आकाश में। शस्त्राशस्त्रि = शस्त्रैः शस्त्रैः प्रहृत्य प्रवृत्तम् ('तत्र तेनेदम्'–बहुव्रीहि) = शस्त्र का शस्त्रों के साथ युद्ध। हस्ताहस्ति=हस्ताभ्यां हस्ताभ्याञ्च प्रहृत्य प्रवृत्तम् (कर्मव्यतिहारे इतच्)।

जीवग्राहम् = जीवन्तं गृहीत्वा (जीव + ग्रह् + णमुल्) = जीवित पकड़ कर।

रत्नाकरमेखलाम् = समुद्र है कमरबन्द जिसका = समुद्रपर्यन्त।
इला = पृथ्वी। शासत् (शास् + शतृ) = शासन करते हुए।

सम्पन्न्यक्कृताखण्डलः = अपनी सम्पत्ति से इन्द्र को भी मात करने वाला।

सीमन्तोत्सवः = संस्कार जो गर्भावस्था के छठे या आठवें मास में किया जाता है।

व्यधत्त (वि + धा + लङ्) = किया, मनाया।

द्वारदेशमध्यास्ते = द्वार पर खड़ा है (अध्यास्ते के योग में 'द्वारदेशम्' यह द्वितीया हुई है—'अधिशीङ्स्थासां कर्म'। अनायि (नी—कर्मणि लुङ्)।

सापदेशम् = वेष बदल कर।

भूभ्रमणबलिना = पृथ्वी पर पर्यटन करने में मज़बूत। उदन्तजातम् (२ ए.) = वृत्तान्त को।

आयुष्मत्तान्तराये = आयु में अन्तराय रूप (७ ए.)। वैलक्ष्यम् = लज्जा। साम्प्रतम् = इस समय। असाम्प्रतम् = अनुचित। अखर्वेण (३ ए.) = अत्यधिक, अदम्य।

०

अवरोधान् = अन्तःपुर के जन (२ व.)। मूलबलम् = प्रधान रक्षक गण, सुरक्षित सेना (Reserved force)

स्थैर्यचर्या = स्थैर्येण चर्या = स्थिरता के साथ प्रयोग।

पुरा (अ.) = पहिले। पुरारातिः = भगवान् शङ्कर।

वीतप्रग्रहाः = लगाम छूटे हुए।

वाहाः = घोड़े। प्राज्यम् = विशाल।

—○○※○○—

: ५ :

निर्गमनमार्गः = बाहर जाने का रास्ता (Outlet) निस्यन्दः = निर्झर। रसता = जलरूप। वैडूर्यम् = लहसुनिया (Lapis lazuli)। प्रचेतसः (६ ए.) = वरुणदेव का। सीकरम् = जलकण। चक्रवालम् = मण्डल। खण्डपरशुः = भगवान् शङ्कर। उपकूलम् = कूलस्य समीपे इति (अव्ययीभावः) = तट के समीप।

बालखिल्यः = मुनिविशेष। दोहदः = गर्भावस्था में उत्पन्न अभिलाषा। गुह्यकेश्वरः = यक्षराज कुबेर। आवर्त्तिभिः = जल के भँवर के समान (आवर्त्तोऽम्भसां भ्रमः)। त्र्यम्बकः = शिव। विषाणः = सींग। दशनमुसल° = मुसल जैसे दाँत।

उत्कलिका = (१) उत्कण्ठा, (२) फूल की कलियाँ। उत्कण्ठित = विरही। कासारः = तालाब। शितिकण्ठः = शङ्कर।

कुवलयापीडः = (१) कंस का हाथी; (२) कुवलय + आपीड = श्वेत कमल का गुच्छा। वनम् = (१) अरण्य, (२) जल।

—○○※○○—

: ६ :

अश्रेयसाम् (६ व०) = अमङ्गलों की। अनुजनुः (नपुं०) = जन्म लेने के बाद। वध्यशिला = फाँसी लगाने की जगह। महामारी = घातक व्याधि। उच्चाटनविद्या = वह तान्त्रिक विद्या जिससे किसी को भी अपने स्थान से भगा दिया जाय। स्तम्भनविद्या = वह तान्त्रिक कल्प जिससे व्यक्ति निश्चेष्ट हो जाय। हिमसंहतिः = तुषारपात। प्रामाणिकः = ईमानदार व्यक्ति। इलावलयम् = पृथ्वीमण्डल। सुज्ञता = समझदारी। अनुवेलम् (अव्यय) = तत्काल।

आमुष्मिकम् = पारलौकिक। वल्लरी = लता।

रोहणाचलाचला (रोहणाचलः = रत्नों की खानों वाला पर्वत, अचला= भूमि)। सुरापगा = देवनदी, गङ्गा। धुरीण (वि.) = धुरे को धारण करने वाला, श्रेष्ठ। चारणः = यशोगान करने वाला। परुष (वि.) = कठोर। विजृम्भते = बढ़ती है। पतत्रिन् (पुं.) = पक्षी। सन्दोहः = प्रवाह। प्रकरः = समूह। कामदुघा (कामान् दोग्धि असौ) = कामधेनु। हेयोपादेयानि = अग्राह्य तथा ग्राह्य वस्तु। ऐहिक (इह भवः—ठञ्) = सांसारिक, इस लोक की। अवगाहः = स्नान। मन्तव्यम् = मानना चाहिये। अभ्युदयः = उत्कर्ष। रसना = जिह्वा। सुकृतम् = पुण्य।

: ७ :

अपकारिणम् गौड़ाधिपम् (२ ए.) = श्रीहर्षदेव के बड़े भाई राज्यवर्धन के साथ विश्वासघात कर गौडराज ने उसकी हत्या कर डाली थी अतएव हर्षदेव के साथ अपकार करने वाले गौडराज के प्रति। अभियियासोः (अभियातुम् इच्छोः) = चढाई करने की इच्छा करने वाले।

अरणिः = काष्ठदण्ड जिसके मन्थन से अग्नि उत्पन्न होती है। गोष्ठी = मण्डली। विप्रलभ्यमानम् = प्रतारित, धोखा दिये जाने वाले। चेतयन्ते = समझ पाते हैं।

कामलाः = (१) कमलसम्बन्धी, (२) पाण्डुरोग से जनित।

दोषान्धत्व = (१) दुर्गुण के कारण गुणों को पहिचानने में असमर्थता, (२) दोषा = रात (में), अन्धता = रतौंध।

वराकः = बेचारा, भाग्यहीन।

अभिचाराः = शत्रुनाश के लिये विहित मान्त्रिक प्रयोग।

विप्रकृताः = (१) ब्राह्मणों द्वारा सम्पादित, (२) अपमानित।

ताडिताः = (१) विद्युत्सम्बन्धी, (२) पीटे हुए।

अनुत्तार (वि.) = जिसमें से निकलना सम्भव न हो। निरयः = नरक। प्रधनः = रण। कुलिशम् = वज्र। परिघः = अर्गल। दिग्ग्रहणे = दिशा को (स्थान को) ग्रहण करने में। भूतिसम्भारः = ऐश्वर्य की सामग्री।

सकलान् अनवाप्य = समस्त वस्तु को न प्राप्त कर।

हरिणहृदयः = भीरु। पाण्डुरपृष्ठः = अशक्त। शब्दविद्रुत…'पलायन' इस शब्द से ही द्वेष करने वाले।

शाणः = धार तेज करने की सिलपट्टी (Whetstone)

रिपूरःकवाटेषु = शत्रुओं के कपाटसदृश विशाल वक्षःस्थल पर। निस्त्रिंशः = छुरी, कटार। प्राग्रहरः = श्रेष्ठ। प्रष्ठः = प्रमुख। अलीकविजिगीषूणाम् = मिथ्या जय को चाहने वाले। क्षारपातैः = नमक छिड़कने से। कण्डूः = खुजली। सन्दंशः = चिमटा (A pair of tongs)। शल्यम् = काँटा। आटोपः = आडम्बर। म्रदय = कोमल करो। इष्वासनम् =

धनुष। गुणकिणः = प्रत्यञ्चा के निशान। देवभूयं गते = देवत्व को प्राप्त। जग्ध (अद् + क्त) = भक्षित।

पादन्यासः = (१) चरणनिक्षेप (२) सूर्य-किरणों का फैलाना। अटनिः = धनुष का कोण भाग।

कृत्तवंशम् = वंश को निर्मूल करता हुआ (कृन्त् + क्त = कृत्त)। मूर्धन्यः = श्रेष्ठ। ध्वस्तिः (ध्वंस् + क्तिन्) = विनाश। व्यरंसीत् (वि = रम् + लुङ्—अ. ए.) = विराम लिया (विपूर्वक रम् धातु परस्मैपदी हो जाती है—'व्याङ्परिभ्यो रमः')।

—०ः०ः०—

: ८ :

विश्वम्भरा = पृथ्वी। आभोगः = परिसर। ललामम् = भूषण। नीरसस्य मनोहरः = नीरस व्यक्ति को अच्छा लगने वाला; नीर-सस्य-मनोहरः=जल एवं धान्य के कारण सुन्दर। जैसे प्रकृति, निपात, उपसर्ग, लोप और वर्णविकार—ये व्याकरणशास्त्र में पाये जाते हैं और जिसने व्याकरण न पढ़ा हो उसे इनका परिचय नहीं होता उसी तरह आर्यावर्त्त में भी अनधीत-विकारः-प्रकृति (प्रजाजन) का निपात (गिरना), उपसर्ग (उपद्रव), लोप (विनाश) तथा वर्णों (ब्राह्मणादि वर्ग) में विकार (संकर) नहीं पाया जाता।

कारण्डवः = हंस। सोपानवीथीयमान = सीढ़ी की तरह। रिङ्गत् = उछलती हुई।

चन्द्रभागा = नदी का नाम। आरामः = उपवन।

आर्यावर्त्तः = 'आ समुद्रात्तु वै पूर्वादा समुद्राच्च पश्चिमात् । तयोरेवान्तरं गिर्योरार्य्यावर्त्तं विदुर्बुधाः ॥' (मनुस्मृति)

व्यतिकरः = प्रसङ्ग ।

कुष्ठयोगः = (१) कुष्ठ नामक सुगन्धि द्रव्य, (२) कोढ रोग ।

गान्धिकापणः = गन्धी की दूकान ।

गुल्मवृद्धिः = (१) लतागुल्म का बढ़ना, (२) गाँठ का रोग ।

चतुरगोपशोभिताः संग्रामाः = च + तुरग + उपशोभिताः, चतुर + गोप + शोभिताः ग्रामाः ।

तुङ्ग = (१) पुन्नाग का वृक्ष (पर्वतके पक्ष में), (२) ऊँचे (नगर पक्ष में) ।

सदाचरणमण्डनानि = (१) नूपुर के पक्ष में सदा चरणमण्डनानि, (२) पुर के पक्ष में सत् + आचरणमण्डनानि ।

सदानभोगाः = (१) वायु के पक्ष में सदा नभोगाः (आकाशगामी), (२) जन के पक्ष में स + दान + भोगाः ।

पीवरोधसः = (१) नदी के पक्ष में पीव (स्थूल) रोधस् (तट), (२) गाय के पक्ष में पीवर (मांसल) ऊधस् (थन) ।

सतीव्रतापदोषाः = (१) सूर्य के पक्ष में—स-त्तीव्रताप-दोषाः; (२) नारी के पक्ष में—सतीव्रत + अपदोषाः ।

मनोहारिसारसद्वन्द्वाः = (१) कादम्बरी के पक्ष में=मनोहारि + सार (अर्थ), और सद्वन्द्वाः (द्वन्द्वसमासयुक्त), (२) क्षेत्र के पक्ष में—मनोहारि + सारस (पक्षी) के द्वन्द्व (युगल) हैं जिनमें (बहु०) ।

तत्पुरुषेण द्विगुना अधिष्ठिताः = (१) कादम्बरी के पक्ष में—तत्पुरुष और द्विगु समास से युक्त, (२) क्षेत्र के पक्ष में—तत्पुरुष(क्षेत्रस्वामी), द्विगु = बैल की जोड़ी रखने वाले—से निरीक्षित।

दृश्यमानबहुव्रीहयः = (१) कादम्बरी के पक्ष में—दीख पड़ते हैं अनेक बहुव्रीहि समास जिसमें, (२) क्षेत्र के पक्ष में—दीख पड़ते हैं चावल के खेत जिनमें।

केदाराः = खेत।

—००:०:००—

: ९ :

परिणाहः = विशालता। तमी = रात्रि। लुण्ठिता = चुरा ली। प्रालेयम्=हिम। जगत्प्राणः = पवन। जवेन=वेग से। शुकतुण्डच्छवेः = सुग्गे के मुख की कान्ति के। अचण्ड (वि.) = कोमल। शाद्वलम् = हरी घास। मिहिका = हिम। निशीथिनी = रात्रि। वरूथिनी = सेना। व्रात-व्रातः = आपत्ति-आक्रमण।

आढकी = अरहर। हरिमन्थकचना। वज्रम्=बाजरा। ज्योतितः= पेरा हुआ। रसयन्तः = स्वाद लेते हुए। धान्यपवनकार्यम् = दँवरी। खेटखर्वटवासिनाम् = खेत की रिक्तभूमि में रहने वालों की। अहिफेनम्= अफीम। कलमः = धान। शुष्कगोमयानाम् = गोइठा की। विराटदेशम्= विदर्भ प्रान्त को। गोपालपुरम् = गवालियर। अङ्कतुंरसेन्दु = १६६६।

गिरिग्रामः = गुडगाँव। सादिनः = घोड़े।

प्रालेयस्नातः = हिमभूषित। पटलम् = समूह। कर्हिचिच्च = और किसी समय। निभालयन् = देखता हुआ। निभृतम् = चुपचाप। कदर्यः = नीच। अत्यवाहयत् = बिता दी। परेद्युः = दूसरे दिन।

समुल्लोचतले = शामियाने में। चन्द्रहासः = खड्ग । वल्गा = लगाम। अध्वनीनः = पथिक । अभ्रंलिहानाम् = गगनचुम्बियों के । सच्छर्दिकाः = छप्परवाले । वर्त्तकः = वत्तक । कमठः = कछुआ ।

अभ्यर्चयिष्ये = पूजा करूँगा ।

प्रघाणस्थैः = बाहरी दरवाजे पर बैठे हुए। स्यूतिकारः = दर्जी। गवाक्षस्थः = खिड़की में स्थित। अक्षक्रीडासक्तः = जुआ खेलने में लीन।

—ooĭoĭoo—

: १० :

उर्वीपतिः = राजा। सौकर्यम् = (१) आसानी (२) सूकर (वराह) का रूप ।

यशोदानन्दसमृद्धिः = (१) कृष्ण के पक्ष में = यशोदा और नन्दराय की समृद्धि, (२) राजा के पक्ष में—यशोदा + आनन्द-

वाहिनी = (१) नदी, (२) सेना ।

महासेनानुगतः = (१) शंकर के पक्ष में—स्कन्दस्वामी से युक्त, (२) राजा के पक्ष में—बड़ी सेना समेत ।

विबुधालयः = (१) मेघ के पक्ष में—देवताओं का वासस्थान, (२) राजा के पक्ष में—पण्डितों का आश्रय ।

छाया = (१) सूर्य की स्त्री; (२) छाया ।

विद्याधरः = (१) देवयोनि, (२) विद्या से युक्त ।

सुमनाः = (१) देव, (२) शोभन मन वाला ।

धृतराष्ट्रः = (१) कौरवराज, (२) राज्य को धारण करने वाला ।

गुणप्रियः = (१) गुण (भीमसेन) है प्रिय जिसका, (२) सद्गुणों को चाहने वाला ।

क्षमानुगतः = (१) क्षमा = पृथ्वी, पर वर्तमान, (२) सहनशील।

सुधर्माश्रितः = (१) सुधर्मा (पुँ०) = देवसभा, (२) सुधर्म + आश्रित।

अतरलः = (१) जो तरल अर्थात् मध्यमणि नहीं हो, (२) जो चपल न हो।

महानायकः = (१) हार का मध्यमणि, (२) नेता।

छलनिग्रहः=कपट और बन्दीकरण; वादविवाद में छल और पराजय।

परीवादः = (१) तन्त्री के तार का संयोग, (२) निन्दा।

खलसंयोगः = (१) खल (पत्थर) का संयोग, (२) दुष्टजन का सम्पर्क।

द्विजिह्वः = (१) दो जबान बोलने वाला, मिथ्याभाषी, (२) साँप।

आहितुण्डिकः = सपेरा।

द्विजराजः = (१) श्रेष्ठ ब्राह्मण, (२) चन्द्रमा।

करपत्रदारणम् = (१) हाथ से पत्तों का फाड़ना, (२) आरी से चीरना।

स हिमालयः = (१) वह हिमालय, (२) सः + हि + मालयः = लक्ष्मी का स्थान।

अवश्यायः = (१) हिम, (२) गर्व।

नोमाया जन्मने = (१) कपट की उत्पत्ति के लिये नहीं, (२) न + उमायाः जन्मने।

हिमानी = (१) हि + मानी (मान वाला), (२) हिमानी = हिम की राशि।

गिरिस्थितः = (१) पहाड़ पर वर्तमान (शंकर), (२) गिरि (वाणी पर) स्थित (दृढ)।

वृषध्वजः = (१) भगवान् शिव, (२) सत्यव्रत ।

सदागतिः = (१) सदा + गतिः, पवन, (२) सत् + आगतिः = सत्समागम ।

पावकाग्रेसरः = (१) अग्नि को प्रदीप्त करने वाला, (२) पवित्र करने वालों में प्रमुख ।

न भोगोत्सुकः = (१) भोग में उत्सुक नहीं (राजा), (२) नभोग + उत्सुकः = आकाशचारी (पवन) ।

सुमनोहरः = (१) विद्वानों को आकर्षण करने वाला राजा, (२) फूलों को हरण करने वाला पवन ।

क्षणदानन्दं = (१) क्षणदा (रात्रि) चन्द्रमा के पक्ष में, (२) क्षणद = उत्सव को देने वाला (राजा) ।

कुमुदबन्धुः = (१) चन्द्रविकासी कमल का मित्र, (२) कुमुत् + अबन्धुः = व्यसनी का शत्रु ।

मित्रोदयः = (१) सूर्य का उदय, (२) मित्र का उत्कर्ष ।

सदापार्थः = (१) सदा अर्जुन के साथ (भारत), (२) सदा + अपार्थः (व्यर्थ) ।

न महाभारतरणयोग्यः = (१) न, महाभारत-रण-योग्य, (२) न, महाभार + तरण + योग्यः ।

नक्षत्रपथस्खलितः = (१) तारों के मार्ग (आकाश) से च्युत त्रिशङ्कु, (२) न + क्षत्रपथ (क्षत्रिय धर्म) + स्खलित ।

शङ्करः = (१) महादेव, (२) शम् + करः = कल्याणकारी (राजा) ।

विषादी = (१) विष भक्षण करने वाला, (२) शोक से ग्रस्त ।

पावकः = (१) अग्नि, (२) पवित्र करने वाला ।

दहनः = (१) अग्नि, (२) सन्तापकारी, कष्टदायी ।

यशोदयाश्रितः = (१) यशोदया + आश्रितः = नन्द, (२) यशो + दया + आश्रितः = राजा ।

घटितसन्धिविग्रहः = (१) जुड़ी हुई सन्धि (जोड़) से युक्त है विग्रह (शरीर) जिसका ऐसा जरासन्ध, (२) घटित + सन्धि + विग्रह = राजाओं से मित्रता तथा युद्ध की घोषणा करने वाला ।

भार्गवः = शुक्र का तारा ।

सदानभोगः = (१) सदा + नभोगः (शुक्र), (२) स + दान + भोगः = राजा ।

सुमित्रोपेतः = (१) सुमित्रया उपेतः (दशरथ), (२) सुमित्रैः उपेतः ।

सुमन्त्रः = (१) दशरथ का सारथी, (२) अच्छा परामर्श ।

रक्षितगुः = (१) गौ की रक्षा करने वाला दिलीप, (२) पृथ्वी का पालक (राजा) ।

कुशलवयोरूपोच्छ्रायः = (१) कुश-लवयोः + रूपोच्छ्रायः, (२) कुशल-वयोरूपोच्छ्रायः ।

उच्छ्रायः = उत्कर्ष ।

: ११ :

आसीन (वि०) = बैठे हुए । प्रश्रयः = विनय ।

अनभिधेयाभिधायी = जो वक्तव्य नहीं है उसे कहने वाला ।

विग्रहः = युद्ध । आशयः = आभ्यन्तर भाग; हृदय ।

विजयः = अर्जुन; जीत । विग्रहः = शरीर ।

भीमस्वभावाः = (१) भीमसेन के साथ आत्मीयता वाले; (२) भयङ्कर प्रकृति के ।

धर्मोदयः = (१) युधिष्ठिर का उत्कर्ष; (२) धर्म की बढ़ती ।

निभालनीयः = समझना आवश्यक है । मातङ्गः = हाथी ।

तुषारवृष्टिः = हिमसम्पात । विभावरी = रात्रि ।

विवस्वान् = सूर्य । सुधाकरः = चन्द्रमा ।

महाकूपारः = विशाल समुद्र । भङ्गुरः = नश्वर ।

परस्परनैरपेक्ष्येण = एक दूसरे के सहयोग के विना, एक-एक ।

समवायः = समुदाय । वामलोचना = सुनयना ।

भङ्गारयन्ति = उद्दीप्त करती, जलाती । दम्भवृत्तिः = ढोंगी । विप्रलम्भः = वञ्चना । तिरोधायकः = छिपानेवाला । मत्सरः = दूसरों के गुणों में दोष निकालने की भावना । कुत्सयति = निन्दा का पात्र बनाती ।

कृपणभावः = कंजूसी । अवसादयति = नाशयति । परिग्रहः = स्वीकार । अभिद्रवति = आक्रमण करती । कदर्थयति = पीडयति । पैशुन्यम् = दुष्टवृत्ति, खलता । पारुष्यम् = कठोरता । क्षीयन्ते = क्षीण होती । अर्थिनः = याचक । कदर्थ्यन्ते = सताये जाते । दुर्वृत्ताः = दुराचारी । विलसन्ति = आनन्द करते । महासाहसिकाः = चोर-डाकू-खूनी-जैसे घोर अपराधी । तस्करः = चोर ।

निर्वापय = बुझा दो। तनूनपात् (पुं.) = अग्नि। स्तम्भय = बन्द कर दो। क्षपय = नष्ट कर दो। विपक्षक्षमाभृताम् = शत्रु राजाओं के। पक्षान् = मित्रों को। सम्मार्जय = साफ़ कर दो। हालाहलम् = विष को।

दुरवगाहतम (वि.) = अत्यन्त दुर्गम। यूपाः = यज्ञ के खम्भे। समारोपय = गाड़ दो। अचल (वि.) = स्थिर। चारः = गूढ़चर। समभिधाय = कह कर। व्यरमत = विराम लिया, समाप्त किया (वि + रम्—लङ्। 'वि' उपसर्गपूर्वक रम् धातु परस्मैपदी हो जाती है)।

—ooo—

: १२ :

अकाण्ड = सहसा, निष्कारण। घर्मर्त्तुना (३ ए.) = ग्रीष्म काल से। निर्वापयितुम् = बुझाने के लिये, शान्त करने के हेतु। वारिदः = बादल। धारागृहम् = फव्वारा। क्षिप्रम् (अव्यय) = तुरन्त। सौदामिनी = बिजली। विहायसि = आकाश में। मरकतम् = पन्ना (Emerald)। भूतधात्री = पृथ्वी। निर्वातुम् (निर + वा + तुमुन्) = बहने के लिए। मांसल (वि.) = पुष्ट, भरे हुए। मानसम् = मानस सरोवर। रणरणक = खेद। कौवेरी = उत्तरदिशा। प्रावृट् = वर्षा। आर्त्तिः = दुःख। अजस्रम् = सन्तत। निचिक्षेप = निक्षेप (deposit) के रूप में कुछ समय के लिये रखा। चण्डभानुः = सूर्य। निदाघः = ग्रीष्म ऋतु। केतकी = केवड़ा। अरतिः = नीरसता। अनारतम् = लगातार। समारम्भि (सम् + आ + रभ्—कर्मणि लुङ्) = शुरू किया गया। बर्हः = मोरपुच्छ। शिखण्डिन् = मयूर। दर्दुरः = मेंढक। श्रवस् (नपुं०) = कान। घूत्कारः = उच्चस्वर। प्रावृषेण्य (वि.) = वर्षा

का । सान्द्र (वि.) = घना । विधुरीभूत = खिन्न, उत्कण्ठित । आविल (वि.) = मलिन । परिसरः = आस पास की भूमि । यदृच्छा = स्वेच्छानुकूल । चर्चा = लेप । केयूरः = बाहुभूषण । मेखला = कमरबन्द । मृणालम् = कमलनाल । तालवृन्तम् = पंखा । वलभी = अटारी, गोपानसी । गवाक्षः = खिड़की । कान्त = प्रसन्न ।